बनारस घराने की गायन परम्परा और पं० बड़े रामदास जी का स्थान एवं योगदान

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की डी.फिल. (संगीत) उपाधि हेतु प्रस्तुत)

शोध–प्रबन्ध
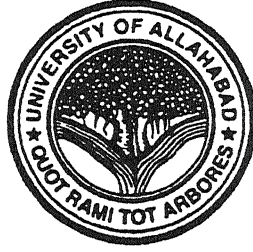
निर्देशक
डॉ० साहित्य कुमार नाहर
(अध्यक्ष)
संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद

शोधकर्ता
विद्याधर प्रसाद मिश्र
(प्रवक्ता गायन)
संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

2001–2002

पं. बड़े रामदास जी मिश्र

(जन्म - 1833 - मृत्यु - 1960)

डॉ. साहित्य कुमार नाहर

Dr. Sahitya Kumar Nahar

B.Sc., M.A., LL.B., D. Phil, D. Litt

Sangeet Praveen (Sitar & Vocal), Gold Medalist

'SUR-MANI', DHARM VISHARAD

'A' Grade A.I.R., Doordarshan Artist

HEAD

DEPARTMENT OF

MUSIC AND PERFORMING ARTS

UNIVERSITY OF ALLAHABAD

ALLAHABAD - 211 002 (U.P.)

तिथि: 06.1.200

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **"बनारस घरनें की गायन परम्परा और पं0 बड़े रामदास जी का स्थान एवं योगदान"** विषयक शोध प्रबंध श्री विद्याधर प्रसाद मिश्र प्रवक्ता गायन संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद ने, इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी0फिल्0 (संगीत) उपाधि हेतु मेरे निर्देशन में स्वयं लिखा है, प्रस्तुत शोध-प्रबंध की सामग्री पूर्णतः मौलिक है।

अतः मैं संस्तुत करता हूँ कि प्रस्तुत शोध-प्रबंध को डी0फिल्0 (संगीत) की उपाधि हेतु परीक्षणार्थ अग्रेंतर कार्यवाही हेतु प्रेषित किया जाय।

सा॰ कु॰ नाहर
6/1/02

(डॉ0 साहित्य कुमार नाहर)

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

****

प्राक्कथन

"गीतं वाद्यं तथा नृत्य त्रयं मुच्यते"

- संगीत रत्नाकर

अर्थात् संगीत एक ऐसा वाक्य है जिसके अन्तर्गत गायन, वादन एवं नर्तन तीनों कलाओं का समन्वय है। संगीत एक योग साधना है, यह एक ऐसी धारा है जो निरन्तर मानव को नित्य नई प्रेरणा प्रदान करती है। संगीतकोविश्व की समस्त ललित कलाओं में सर्वश्रेष्ठ माना गया है। भारतीय शास्त्रों में संगीत को ब्रह्मस्वरूप माना गया है। मनुष्य का जीवन सर्वथा संगीत से अनुप्रेरित होता रहता है। मानव अपने जीवनकाल में विविध प्रकार के उत्थान-पतन, हर्ष, विषाद और राग द्वेष से ग्रसित रहता है संगीत ही एक ऐसा माध्यम जिससे आत्मा की सुख शान्ति मिलती है और सभी चिन्ताओं से मनुष्य मुक्त हो जाता है।

आधुनिक युग में मनुष्य के मानसिक तनाव में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। मानसिक रूप से आक्रान्त मनुष्य को संगीत विश्रान्ति प्रदान करता है। साथ ही उसकी समस्त चिन्ताओं एवं व्यथाओं का निराकरण करती है ।

विष्णु पुराण- जपाति कोटि गुणं ध्यानं।

ध्यानाति कोटि गुणं लयः।।

लयाति कोटि गुणं गानं।

गानात् पटतर न च।।

अर्थात् संगीत में जप, ध्यान, लीनता तीनों ही विद्यमान है, संगीत से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। संगीत आनन्द का आर्विर्भाव है। आनन्द दैवीय स्वरूप है इस दुःख पूर्ण

संगीत के ईश्वरीय स्वरूप होने के कारण ही जो मनुष्य संगीत की साधना करते हैं वे तप, दान, यज्ञ , कर्मयोग आदि के कष्टों से अस्पृश्य रहकर निर्विघ्न मोक्षमार्ग का अनुगमन करते हैं। ऐसा योग एवं ज्ञान के सर्वश्रेष्ठ आचार्य याज्ञवल्क्य एवं अन्य संगीताचार्यो ने भी कहा है।

रसालंकार- अलंकृत काव्य की स्वर, ताल एवं लय में आबद्ध रचना संगीत है। सम्यक् रूप से गाया जाने वाला गीत 'सम' एक अवयव है जिसका प्रयोग निरन्तरता, उत्कृष्टता, समानता संगीत औचित्य आदि को सूचित करने के लिए किया जाता है। 'गे' का अर्थ गान अतः 'संगीत' शब्द का अर्थ उत्कृष्टतापूर्ण अथवा औचित्यपूर्ण ढंग से गायन माना गया है।

पाश्चात्य परम्परा में संगीत के लिए 'म्यूजिक' शब्द का प्रयोग करते हैं। म्यूजिक शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के 'म्यूजिका' से मानी जाती है। ग्रीक परम्परा में 'म्यूज' शब्द उन देवियों के लिये है जो समस्त ललितकलाओं की अधिष्ठात्री देवी मानी जाती है।

अरबी परम्परा में संगीत का समानार्थी शब्द 'मूसिकी' है। यूनानी भाषा में 'मूसिका' आवाज को कहते हैं। अर्थात् इल्में मूसीकी (संगीत कला)। संगीत के अन्तर्गत गायन, वादन एवं नृत्य - इन तीनों ही कलाओं का समावेश है। इनमें गायन को सर्वोच्च प्रधानता

वीणावादन तत्वज्ञः श्रुति जाति विशारदः।

तालज्ञश्च प्रयासेन मोक्षमार्ग प्रयच्छति।।

याज्ञवल्क्य स्मृतिधृत पाठ- 3-5

पं0 दामोदर कृत- संगीत दर्पण।

पं0 अहोबल कृत संगीत पारिजात- श्लोक - 33

दी गयी है। पं0 अहोबल अपने ग्रन्थ 'संगीत पारिजात' में लिखते हैं कि गायन , वादन, नृत्य इन तीनों कलाओं के मेल को संगीत कहा जाता है। जिनमें एक के बिना दूसरा अधूरा है।

पं0 शार्ड्गदेव कहते हैं- नृत्यं वाद्यानुगं प्रोक्तं वाद्यं गीतानुवर्ति च। अर्थात नृत्य वाद्य का अनुकरण करने वाला तथा वाद्य गीत का अनुगमन करने वाला होता है अतः गीत प्रधान है। भरतमुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' के अनुसार गीतनाटक के प्रमुख अंगों में से अन्यतम है तथा वादन एवं नृत्य में दोनों ही इसके अनुगामी हैं। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में वाद्य तथा नृत्य को गीत के अनुवर्ती माना गया है। नृत्य कला के सम्यक ज्ञान के लिए गीत तथा वाद्य का ज्ञान आवश्यक है।

बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों में 'गान्धव्ववेद' के अन्तर्गत गीत वादित नच्च अर्थात् नृत्य तथा अरुरवानम अर्थात कथा पठन का समावेश है।

आधुनिक युग में पूर्ववर्ती परिभाषा में पर्याप्त परिवर्तन हो गया है। ये तीनों विधायें इतनी परिपक्व हो गयी हैं कि स्वतंत्र रूप से अपना अपना रूप स्थापित की है।

---

* संगीत रत्नाकर शार्ड्गदेवे कृत- अड्यार संस्करण
अध्याय-1, प्रकरण 1, श्लोक-24
* भरतमुनिकृत नाट्यशास्त्र-4, 260-65
* विष्णु धर्मोत्तरपुराण, तृतीय खण्ड, चित्रसूत्रम्

शास्त्रीय संगीत की उत्पत्तिः

भारतीय शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति कब और कैसे हुआ । इस विषय पर कहना अत्यन्त कठिन है। संगीत की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न मत मतान्तर हैं। इसमें तीन प्रकार का मुख्य सिद्धान्त है:-

(अ) धार्मिक सिद्धान्त।

(ब) प्राकृतिक सिद्धान्त।

(स) सामाजिक अथवा मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त।

(अ) धार्मिक सिद्धान्तः

पुराविदों के अनुसार संगीत कला तथा शास्त्र की उत्पत्ति स्वयंभू परमेश्वर से हुआ। भारतीय परम्परानुसार नटराज शिव नृत्यकला के आदि स्रोत हैं तथा भगवती सरस्वती गीत तथा वाद्य कला की जन्मदात्री है। दत्तिल के अनुसार गान्धर्व के आदि प्रवचनकार स्वयम्भू ब्रह्मा हैं। नाट्यशास्त्र के रचयिता आचार्य भरतमुनि ने नाट्य का प्रारम्भ ब्रह्मा से माना है। भारतीय जनश्रुति है कि एक बार इन्द्र आदि देवताओं ने भगवान ब्रह्मा जी से प्रार्थना किया कि हम दृश्य एवं श्रव्य एक साथ देखना चाहते हैं। इस पर ब्रह्मा जी ने ऋग्वेद से पाठ, साम, वेद से गीत (संगीत) यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस अर्थात- चारों वेदों से नोट्य का सृजन किया जिसमें दृश्य और श्रव्य दोनों ही है। इस प्रकार नाट्य के साथ साथ संगीत का भी अभ्युदय हुआ।

शिवपुराण के अनुसार नारद ऋषि में कई वर्षो तक योग साधना की, तब भगवान शंकर उन पर प्रसन्न होकर संगीतकला की शिक्षा दी। माता पार्वती के शयनमुद्रा में अवस्थित

से हिण्डोल, उत्तर मुख से मेघ, दक्षिण मुख से दीपक तथा आकाशस्थ मुख से श्री राग का निर्माण हुआ। माता पार्वती के श्रीमुख से कौशिक राग का निर्माण हुआ। इस प्रकार भगवान शिव ने नारद मुनि को संगीत की शिक्षा दी।

माता सरस्वती के हाथ में वीणा, नारद मुनि, के हाथ में नारदीय वीणा, शंकर जी के हाथ में डमरू और भगवान विष्णु के हाथ में शंख, तथा ऋषि मुनियों द्वारा भगवान की प्रशंसा में गीत गायन, संगीत की उत्पत्ति के धार्मिक सिद्धान्त का अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

(ब) **प्राकृतिक सिद्धान्तः**

विद्वानों के मतानुसार प्रकृति की सौन्दर्य रूप से प्रेरणा प्राप्त करके संगीत का सृजन किया। सरिताओं की ऊँची नीची लहरों से, सागर की तरंगों से, पक्षियों के सुमधुर कलरव से और समीर के शीतल-मंद- सुगन्ध झोकों से मधुर कर्णप्रिय ध्वनियों को सुनकर मनुष्य संगीत सृजन के लिए विचार किया होगा। अपने आसपास पशु और पक्षियों की विभिन्न ध्वनियों को सुनकर स्वयं वैसी ही ध्वनियों को अपने गले से उच्चारण कर आदिम मानव को हुई हो तो कोई आश्चर्य नहीं। ध्वनि ही संगीत का आधार है। संगीत का उद्भव पशु- पक्षियों की ध्वनि से हुआ है। इसी सन्दर्भ में मतंग मुनि कृत 'वृहद्देशी' में एक श्लोक वर्णित है-

षडजं वदति मधूरा, ऋभमंचातको वदेत्।

अजा वदेत गान्धारौ, कौंचो वदति मध्यमाः।।

प्रावृतकाले तु सम्प्राप्त, धैवतं दार्दुरो वदेत्।।

सर्वदा च तथा देवि निषादं वदेत् गजः।।

-

(स) **सामाजिक अथवा मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तः**

समाज के रहन-सहन, उत्सव आदि तथा बालक के जन्म से लेकर मनाव के मृत्यु तक संगीत का मनोवैज्ञानिक प्रभाव जीवन में पड़ता रहता है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डा० फ्रायड के अनुसार संगीत कला की उत्पत्ति बालक के मनोविज्ञान के आधार पर हुआ। बालक का रोना, हंसना, चिल्लाना मनोवैज्ञानिक तरीके से सभी क्रियायें स्वयं उत्पन्न होती हैं। मनुष्य प्रथम बोलना सीखा , चलना , फिरना और धीरे-धीरे क्रियाशील होने पर अपने भावों को संगीत के द्वारा उत्पन्न किया। भिन्न-भिन्न प्रकार के सामाजिक वातावरण के अनुकूल मनुष्य संगीत के द्वारा अपने मन की भावनाओं को प्रस्तुत करता रहा।

उपरोक्त सिद्धान्तों के आधार पर यह निश्चित है कि संगीत की उत्पत्ति के सन्दर्भ में भिन्न-भिन्न सिद्धान्त एवं मत मतान्तर प्रचलित है। इन मतों में सबसे अधिक धार्मिक सिद्धान्त के मत से जनश्रुति प्रेरित है। संगीत का उद्गम मानव जाति के उद्भव के साथ ही हुआ। मानव का एक दूसरे के प्रति लगाव, प्रेम ही कंठ के द्वारा ध्वनि का सृजन हुआ। रुदन तथा गान इसी सहज ध्वनि का रूपान्तर है। संगीत मानव का सहजात है,क्योंकि जब से मानव का पृथ्वी पर अवतरण हुआ तबसे संगीत आया। अर्थात् संगीत का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना स्वयं मानव का इतिहास है।

शास्त्रीय संगीत की विभिन्न शैलियाँ:-

(1) प्राचीन काल

(2) आधुनिक काल

(1) प्राचीन कालः

प्राचीन काल के गायन शैलियों के बारे में सुस्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता है। यज्ञ, धार्मिक कार्यो में संगीत के गायन, वादन, नर्तन का प्रयोग होता था। वैदिक साहित्य में अन्य कलाओं के साथ संगीत कला के भी प्रचुर उल्लेख यत्र तत्र मिलते हैं। गायन के लिए वैदिक साहित्य में 'गीत' शब्द मिलतन है। गायन, वादन, एवं नृत्य के भी उल्लेख मिलते हैं।

गायन का प्रतिनिधित्व 'सामगान' करता है जो वैदिक काल के गायन को संकेत करता है। यज्ञ आदि सुअवसरों में सामगायन के छन्दोवद्ध गीतों का गायन होता था। साम को विभिन्न स्तोत्रों द्वारा गाया जाता था। इन स्तोत्रों को वैदिक गायन का अलंकार कहते थे। साम के गायक को उद्धाता कहा जाता था। जो श्रोताओं के मन को अनुरंजित करके सम्मान प्राप्त करता था। गीतों की रचना, गायन में नियम बद्धता रंजकता तथा उच्चारण शुद्धता पर ध्यान दिया जाता था। साम गायन स्तुति के रूप में भी की जाती थी जैसे सूर्य तथा अग्नि की स्तुति साम स्तोत्रों द्वारा की जाती थी। साम गायन में देवी शक्ति का निवास माना जाता था। यज्ञ समाप्ति भी साम गायन से होता था यज्ञों के अवसर पर अद्गाताओं की पत्नियाँ भी गायन की संगति विभिन्न वीणाओं द्वारा करती थी। 'वीणा गाथी' संज्ञा जो वैदिक साहित्य में अनेक स्थलों पर प्रयुक्त की गयी है वह वीणा वाजक वाद्य के साथ गायन करने वाले के लिए की गयी है। वीणा वादन ब्राह्मण एवं क्षत्रिय दोनों ही करते थे। दोनों ही स्वरचित गायन यज्ञ के अवसर पर करते थे ब्राह्मण गायक यज्ञकर्ता की प्रशास्ति का गायन करता था, क्षत्रिय गायक यज्ञकर्ता के युद्ध और विजय की सफलताओं पर गाता था। वैदिक साहित्य में साम संगीत के अतिरिक्त कुछ अन्य उल्लेख है । गायन

गाथा का गायन करते थे। ये गाथा उनकी स्वयं रचित होती थी जिनकी विषयवस्तु राजाओं और देवताओं की प्रशंसा में होती थी।

वादनः

वैदिक काल में गायन के बाद वादन का स्थान होता था। भरत एवं अन्य आचार्यों ने शास्त्रीय विवेचन में चार प्रकार के वाद्यों का उल्लेख है। वैदिक काल के तंत्री वाद्य- वीणा इस वर्ग का प्रमुख वाद्य था 'वाण वीणा' कर्करि, काग्र वीणा, 'गोधा वीण' आदि 'बाण' नामक तंत्री वाद्य वैदिक काल का सर्वाधिक प्रचलित महत्वपूर्ण प्रकार था। इसमें 100 तारों का प्रयोग था जो मनुष्य के शतायु से की गयी है। इसमें मन्द्र मध्य तथा तार स्थानों का भी प्रयोग होता था। शत तंत्री वीणा का प्रचार आज भी प्रचलित काश्मीरी वाद्य सन्तूर दक्षिण भारतीय याल कात्यायनी वीणा के रूप में मिलते हैं।

वैदिक काल के अवनद्ध वाद्यः

इस वर्ग के अन्तर्गत सर्वाधिक प्रचलित वाद्य, दुन्दुभि, भूमि दुन्दुभि था। ये ढोल वर्ग के चर्म के वाद्य थे। दुन्दुभि ढोल वर्ग का वाद्य था जिसे काष्ठ पर चर्म मढ़कर बनाते थे। भूमि दुन्दुभि भूमि में गड्ढा खोदकर उस पर चर्म को मढ़कर बनाया जाता था। दुन्दुभि न केवल रणवाद्य था अपितु यज्ञ जैसे धार्मिक कार्यों में भी बजता था।

सुषिर वाद्यः

सुषिर वाद्य के अन्तर्गत 'वेणु' का विशेष स्थान था जो बहुधा बॉस के लिए प्रयुक्त किया गया था। जो बाद में 'वंशी' वाद्य या वैदिक काल में 'तूणव' संज्ञा से जाना गया। 'नाली' ही वंशी का पर्याय था। प्राचीन काल में जिस प्रकार गायकों एवं वीणा वादकों का वर्ग बन गया था उसी प्रकार वंशी वादकों का भी वर्ग बन गया था। यज्ञ में अन्य वाद्यों के साथ 'तूणव' (नादस्वरम् या शहनाई) का भी वादन शुभदायक था।

घन वाद्यः

इसके अन्तर्गत लय सम्बन्धी वाद्य आते हैं जैसे करताल, मजीरा, झांझ आदि। इस वर्ग के अन्तर्गत 'आघाट या आघाटि' नामक वाद्य का उल्लेख है। यह वाद्य नृत्य एवं गायन के संगत में कार्य करता था।

वैदिक काल में संगीतज्ञ हाथ से ताल देने की पद्धति से परिचित थे। हाथ से ताल देने का भी एक वर्ग होता था। ये 'प्राणिन' के रूप में ज्ञात थे पाणि-संघात अर्थात दोनों हाथों से ताल देने की भी संज्ञन मिलती है। इस प्रकार वैदिक काल के संगीतज्ञ तत, तुषिर, अवनद्ध, घन वाद्यों के अतिरिक्त हस्तताल से भी परिचित थे।

तृतीय तत्व नर्तनः

नृत्य को वैदिक काल में संगीत का एक अंग मानते थे। इसमें हावभाव एवं अंग तथा पद संचालन होता था जो अभिनय के निकट था। इसमें लय, ताल तथा गायन वादन की संगति, संगीत को रोचक तथा मनोहारी बना देता था। बिना गायन तथा वाद्य वादन संगति के नृत्य नीरस होता था। अर्थात् गायन वादन से युक्त नृत्य ही संगीत का तत्व होता था। नृत्य में वेष भूषा आभूषणादि का भी उपयोग होता था। नृत्य स्त्री व पुरुष दोनों ही करते थे। इनका एक अलग वर्ग होता था।

पौराणिक कालः

विद्वानों का कथन है कि पौराणिक काल में वैदिक काल की भाँति संगीत के आन्तरिक विकास इस काल में नहीं प्राप्त होता है। इस काल के संगीतज्ञ वैदिक काल के संगीतकारों की तरह उदार दृष्टि वाले नहीं थे।

संगीत समाज में फैला तो था परन्तु उसका अध्यात्म रूप न होकर सामाजिक रूप विशेष विकसित था। नाद्य, हल्लीसक, जलक्रीड़ा, आदि तत्कालीन जनता के लिए

मनोविनोद के साधन थे। नाटकों में प्रायः स्त्री तथा पुरुष दोनों ही का अभिनय होता था तथा भाव अभिनय संगीत का प्रयोग होता था। गायन वादन तथा नर्तन का कार्य पुरुषों की अपेक्षा स्त्री पात्रों के द्वारा अधिक होती थीं।

स्मृति ग्रन्थों में संगीतः

स्मृति ग्रन्थों के आधार पर गृहस्थ आश्रम में रहने वाले स्त्री-पुरुषों को जीविकोपार्जन के लिए संगीत का आधार लेना मना था। वेदाध्ययन करने वाले ब्रह्मचारियों को संगीत का ज्ञानार्जन निषेध था। मनुस्मृति में संगीत और संगीतज्ञों का स्थान निम्नकोटि का था। व्यवसायी संगीतज्ञों को हीन दृष्टि से देखा जाता था। व्यवसायी संगीतज्ञ देशाटन द्वारा अपने कला का स्थान-स्थान पर प्रदर्शन करके मनोरंजन द्वारा जीविकोपार्जन करते थे।

मौर्य कालः

इस काल में संगीत नागरिक जीवन का अभिन्न अंग बन गया था। विवाह योग्य वर वधू के लिए संगीत कला प्रवीण को अभीष्ट गुण माना जाता था। महिलाओं को संगीत शिक्षा विवाहोपरान्त भी दी जाती थी। संगीत शिक्षा को प्रबंध संगीतशालाओं द्वारा होता था। ललित कलाओं की संस्थाओं में आचार्यों को उनकी योग्यतानुसार राज्य की ओर से वेतन दिया जाता था। संगीतकला का राजनैतिक दृष्टि से उपयोग मौर्यकाल की एक प्रधान विशेषता मानी गयी है।

कनिष्क कालः

कनिष्क एक उत्तम संगीतज्ञ थे। इस काल में देश के समस्त प्रान्तों से संगीतज्ञों का आपसी सम्बन्ध सुदृढ़ हो गया था। कनिष्क के दरबार में उत्तर भारत, दक्षिण भारत, अफगानिस्तान तथा चीन आदि के कलाकार थे। एशिया में भारतीय संगीत का प्रचार करने

तथा एकरूपता स्थापित करने में यह युग अधिक महत्व का है।

गुप्तकाल:

इस युग में चन्द्रगुप्त का अधिक समय युद्ध में ही व्यतीत हुआ फिर भी भरत के पुत्र दत्तिल द्वारा "दत्तिलम्" ग्रन्थ की रचना हुई। चन्द्रगुप्त के बाद समुद्रगुप्त का काल था। समुद्रगुप्त अच्छे वीणा वादक थे। इस काल में शास्त्रीय संगीत का अच्छा प्रचार था। यह सत्य है कि भारतीय संगीत का गुप्तकाल से अधिक विकास हुआ तथा रोम, फ्रान्स, इग्लैण्ड, हंगरी आदि देशों में भारतीय संगीत प्रचार में आया। इस युग में संगीत तथा साहित्य की अद्भुत उन्नति के कारण इसे उनके विद्वान संगीत का स्वर्णकाल कहते हैं।

गुप्तकाल के बाद:

यवन काल (647 से 1290 तक):

इस काल में देश छोटे-छोटे भागों में विभक्त हो गया था। इस काल में संगीत अनेक वर्गो में बंट गया था। प्रत्येक वर्ग की अपनी अपनी दृष्टिकोण से संगीत का विकास करता रहा परिणाम स्वरूप संगीत के अनेक घराने बन गये। जो संकीर्ण दृष्टिकोण से एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न करते रहे। राजपूत संगीत प्रिय थे। उनके दरबारों में अनेक संगीतज्ञों को आश्रय मिला हुआ था। इस काल के उपलब्ध राग रागिनियों के चित्र यह बताते हैं कि राजपूतों में संगीत के प्रति गहरी रुचि थी।

इसी काल में भारत में यवनों का आक्रमण होते रहने के कारण लोगों का जीवन कष्टप्रद हो गया। हिन्दू मुसलमान होते जा रहे थे। इस प्रकार धर्म परिवर्तन करने वाले व्यक्ति यवन संस्कृति एवं संगीत की प्रशंसक हो गये। विजयी मुसलमान अपने साथ कुछ

कलाकारों को भी लाये। इस प्रकार भारतीय संगीत को समूल नष्ट करने का प्रयास किया गया। फिर भी दक्षिण भारत में पं० शारंगदेव नें संगीत रत्नाकर नामक अमूल्य ग्रन्थ की रचना की।

खिलजी युग (1290 से 1320 ई० तक):

अलाउद्दीन खिलजी के राज्य में अमीर खुसरो नामक एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे, खुसरो ने कई ताल तथा नई रागों की रचना की। इस काल में मुसलमानों ने संगीत के शास्त्रीय पक्ष की अवहेलना करके केवल क्रियात्मक पक्ष की ओर ध्यान दिया। फलस्वरूप कव्वाली तथा तराना आदि प्रचलित हो गये।

लोदी काल (1414 से 1525 तक):

सिकन्दर लोदी संगीतज्ञों का आदर करते थे। इस काल में ध्रुवपद , धमार, कव्वाली, गजल आदि प्रचार में आये। ग्वालियर के मानसिंह तोमर (1486 ई०) ने ध्रुवपद शैली को जन्म दिया।

मुगल काल (1525 से 1840 तक):

इस काल में संगीत में अनेक परिवर्तन हुए तथा अच्छे अच्छे संगीत के कलाकार तानसेन, स्वामी हरीदास, बैजू, रामदास, मदनराय, श्री चन्द जैसे उच्चकोटि के कलाकार तथा अहोबल कृत संगीत पारिजात, लोचन कृत 'रागतरंगिणी' रामामात्य कृत' स्वर मेल कलानिधि' पं० श्री निवास संस्कृत - रागतत्व विबोध' आदि उल्लेखनीय संगीत शास्त्र सम्बंधी ग्रन्थ लिखे गये। इस काल में बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ , औरंगजेब तथा बहादुरशाह जैसे बादशाह हुए, जिनके काल में संगीत में अनेकों परिवर्तन हुए। साथ ही साथ नये नये गायन शैलियों जैसे- ख्याल, टप्पा, तराणा तथा ठुमरी का जन्म हुआ।

अंग्रेजों का काल:

सन् 1750 से ही अंग्रेजों का प्रवेश काल माना जा सकता है। वे भारतीय संगीत को कोलाहल तथा असभ्यों का संगीत मानते थे। समाज द्वारा घृणित लोगों के हाथ में संगीत चला गया था, फिर भी कुछ राजाओं के दरबारों में संगीतज्ञों को आश्रय मिला हुआ था।

संगीतज्ञों का सामूहिक रूप से नहीं मिलने के कारण गायन, वादन तथा नृत्य में भिन्न भिन्न घराने ने जन्म ले लिया।

उधर तंजौर के महाराजा तुलाजी राव भौंसले (1763-1787ई0) भारत के समस्त संगीत विद्वानों को बुलाकर पारितोषिक तथा भूमादि का दान किया। इस प्रकार तंजावुर भारतीय संगीत का केन्द्र बन गया। इसी समय (1771-1804ई0) जयपुर के नरेश महाराजा प्रताप सिंह के प्रयास से भारतीय संगीत को शास्त्रोक्त व्यवस्था देने के लिए, संगीत विद्वानों की सम्मति से 'संगीत सार' नामक एक ग्रन्थ की रचना की गयी।

आधुनिक काल (1900 से 1950 ई0 तक):

इस काल में संगीत के उद्धार एवं प्रचार का श्रेय भारत के दो विभूतियों को है। इस काल में अच्छे-अच्छे संगीतज्ञ तथा घरानेदार गायक वादक थे, परन्तु पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे और पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के अथक प्रयास द्वारा संगीत का कलात्मक तथा शास्त्रीय पक्ष का सर्वश्रेष्ठ विकास हुआ। इन्होंने अनेकों संगीत विद्यालयों की स्थापना , संगीत सम्मेलनों द्वारा विचारों का आदान-प्रदान तथा देश भ्रमण करके पुस्तकालयों में छिपी हुई ग्रन्थों का अध्ययन करके उनमें लिखी शास्त्र के धरोहरों को निकालकर पुस्तकों की रचना की। इन्होंने स्वरलिपि- पद्धति, थाट राग पद्धति तथा रागों की बिखरी हुई रूपरेखाओं को विचार विमर्श द्वारा एकरूपता प्रदान करक पुरानी

पुरानी बन्दिशों को प्रकाशित करके आधुनिक युग में महान कार्य किया है जो संगीत जगत के लिए महान कार्य तथा अमूल्य निधि है। शास्त्र एवं क्रियात्मक कार्य उनका सदैव अमर रहेगा। कई घरानों की अमूल्य बन्दिशों को एक जग एकत्र करके भातखण्डे जी ने क्रमिक पुस्तक मालिका भाग- प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, छठा तथा सप्तम में अनेकों विलम्बित , द्रुत, ख्याल, तराना, लक्षणगीत, ध्रुवपद , धमार आदि की स्वरलिपि करके प्रकाशित किया। जिनमें उनकी स्वयं रचित बन्दिशें भी हैं। साथ ही साथ भातखण्डे शास्त्र - प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ भाग में भिन्न-भिन्न घरानों के विद्वानों से तर्क द्वारा शास्त्र की पुस्तक लिखी जो सराहनीय कार्य है। देश के शिक्षित वर्ग; संगीत की ओर विशेष रूप से आकृष्ट होकर संगीत कला को समझने लगे। कुलीन घरानों के युवक-युवतियाँ और कन्यायें संगीत शिक्षा ग्रहण करने लगीं। जन साधारण में संगीत के प्रति नई चेतना एवं अभिरुचि उत्पन्न हो गयी। आशा है निकट भविष्य में भारतीय संगीत उच्चतम शिखर पर आसीन होकर अपनी विशेषताओं से संसार को प्रभावित करेगा। भारत सरकार विद्यार्थियों को प्रोत्साहन तथा अच्छे-अच्छे गुणीजनों, कलाकारों को सम्मानित कर रहा है। आकाशवाणी तथा दूरदर्शन भी भारतीय संगीत कला तथा साहित्य को प्रोत्साहित कर रहा है। स्वतंत्र भारत में संगीत उन्नति के पथ पर चलकर विकास की ओर उन्मुख है।

काशी (बनारस) की संगीत, संगीतज्ञ तथा उनकी परम्परायें:

मैंने अपने शोध प्रबंध में संगीत की उत्पत्ति, प्राचीनकाल में रामायण काल, महाभारत काल, वैदिक काल तथा मध्यकाल में संगीत विषयक तथ्यों को लिखने का प्रयास किया है। इसके बाद भारतीय संगीत में घरानों की उत्पत्ति तथा उनकी विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला है।

पुस्तकों में प्राप्त मुख्य घरानों में काशी (बनारस) की संगीत परम्पराओं तथा बनारस के संगीतज्ञों का उल्लेख अप्राप्य है, इसका मुख्य कारण यह है कि बनारस के संगीतज्ञ ध्रुवपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी-दादरा, चैती, कजरी आदि सभी प्रकार के गायन शैलियों को विधिवत समान रूप से गाते हैं। इसलिए बनारस के अधिकतर कलाकार चौमुखे गायक के रूप में माने जाते हैं।

काशी नगरी का ऐतिहासिक महत्व समृद्ध एवं गौरवशाली रही है। इसकी प्राचीनता न केवल इतिहास, ग्रन्थों, अपितु विविध शास्त्रीय प्रमाणों एवं अभिलेखों से सत्यापित हैं। संगीत, कला, दर्शन ज्योतिष एवं साहित्य की एक अविछिन्न, आढ्य परम्परा की पोषिका होने के कारण काशी नगरी का उल्लेख प्रायः सभी प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त होता है। भगवती भागीरथी के रम्य तट पर अवस्थित एवं समग्र विद्या-कला के अधिष्ठातादेव महादेव शिव के द्वारा अधिष्ठित इस नगरी के इसी वैशिष्ट्यता ने अनेक इतिहासकारों को आकृष्ट किया है।

गायन, वादन तथा नृत्य इत्यादि के विविध अंगों में विश्व में कीर्तिमान स्थापित करने वाले बनारस की संगीत परम्परा तथा संगीतज्ञों पर एक स्वतंत्र ग्रन्थ निर्माण करने की दिशा में किसी विद्वान लेखक का ध्यान नहीं गया। बनारस के अति समृद्ध संगीत कलाकारों एवं संगीत मर्मज्ञों के बारे में मैंने अपने शोध प्रबंध में लिखने का प्रयास किया है। संगीत की ध्रुवपद, धमार, ख्याल, टप्पा , ठुमरी चैती, होली आदि विविध शैलियों के गायन सम्बन्धी प्रमुख कलाकारों तथा उनके घरानों का विवेचन प्रस्तुत शोध प्रबंध में किया गया है।

बनारस (काशी) की वाग्गेयकार परम्परा की तथा उच्चकोटि के संगीतज्ञ स्व0 पं0 बड़े रामदास जी मिश्र जो आधुनिक युग के महान संगीतकार, वाग्गेयकार थे उनके

गायन शैली तथा उनके द्वारा रचित भिन्न-भिन्न रागों में विलम्बित तथा द्रुत ख्याल की कुछ बन्दिशों को भिन्न-भिन्न तालों में स्वर लिपिबद्ध करके शोध प्रबंध में लिखा गया है। साथ ही साथ उनके शिष्यों की एक लम्बी सूची तथा उनकी संक्षिप्त संगीत के प्रति की गयी सेवाओं का भी उल्लेख शोध प्रबंध में किया गया है।

आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि प्रस्तुत प्रबंध में संगीतजगत् के गुणीजन तथा संगीतानुरागीजन विद्वज्जन इसका समुचित मूल्यांकन करेंगे।

शोधकर्ता
(विद्याधर प्रसाद मिश्र)
(प्रवक्ता) (गायन)
संगीत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

आभार ज्ञापन

सर्वप्रथम मैं संगीत की अधिष्ठात्री माँ सरस्वती को नमन करता हूँ जिनके आर्शीवाद से यह शोध कार्य पूरा हो सका और बाद में परम श्रद्धेय स्व0 पं0 बड़े रामदास मिश्र जी जिनके आर्शीवाद व प्रेरणा तथा उनकी जीवनगाथा व कृतियों का सही रूप में संकलन हो सका है। उस परम संगीत साधक को कोटिकोटि प्रणाम एवं अपने दादा गुरू स्व0 पं0 हरिशंकर मिश्र जी जिनका थोड़ा प्रसाद पाकर मैं इस लायक बन सका हूँ उनको मेरा सत्-सत् प्रणाम और अपने पिता पं0 गणेश प्रसाद मिश्र जी जिनके शरण में रहकर संगीत शिक्षा व इस शोध कार्य हेतु पूर्ण रूप से सही मार्ग दर्शन व रचनाओं के संकलन में पूर्ण आशीर्वाद प्राप्त हुआ है। मैं उनके इस सहयोग का जीवन भर आभारी रहूँगा।

मैं अपने शोध निर्देशक डा0 साहित्य कुमार नाहर जी जो कि मेरे प्रेरणा स्वरूप और हर तरह का मार्गदर्शन में जिनका अद्वितीय योगदान रहा है जिनके आशीर्वाद व सही मार्गदर्शन के द्वारा यह शोध कार्य पूरा हो सका है मैं उनका जीवनभर आभारी रहूँगा।

मैं उन सभी गुरुजनों एवं विद्वज्जनों के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करते हुए जिनसे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सहयोग प्राप्त हुआ है , अपना यह शोध ग्रन्थ संगीत क्षेत्र में समर्पित करता हूँ।

अन्त में मैं श्री राम राज पाण्डेय जी का भी आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने अल्प समय में इसे टंकित कर प्रस्तुत रूप प्रदान किया।

दिनॉक:

शोधकर्ता
विद्याधर प्रसाद मिश्र

विद्याधर प्रसाद मिश्रा
प्रवक्ता (गायन)
संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

प्रथम-अध्याय

भारतीय संगीत का अभ्युदय एवं विकास

प्राचीन कालः

भारतीय शास्त्रीय संगीत अत्यन्त प्राचीन है। भारत में प्रायः सभी विधाओं के लिए किसी न किसी देवी देवताओं को निश्चित कर दिया गया है। इसी क्रम के आधार पर माँ सरस्वती को विद्या तथा संगीत की देवी माना गया है। माँ सरस्वती के हाथ में वीणा तथा भगवान शंकर के हाथ में डमरू तथा गन्धर्व, किन्नर तथा अप्सरायें गायन , वादन नृत्य करती थीं। जिससे यह स्पष्ट है कि भारतीय शास्त्रीय संगीत अत्यन्त प्राचीन काल से निरन्तर चला आ रहा है। भारतीय संगीत का जन्म ईसा से हजारों वर्ष पूर्व हुआ होगा। भारतीय पुरातत्व विभाग की खुदाई से प्राप्त मूर्तियों तथा शिलालेखों के आधार पर यह निश्चित हो चुका है कि भारतीय संगीत का जन्म ईसा से सात आठ हजार वर्ष पूर्व हो गया था। भारतीय संगीत की गहराई में जानने के लिए इतना ही समय चाहिए।

इतिहास के विद्वानों का मत है कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भारतीय संगीत की नींव द्रविणों के संगीत, जिसे वे चिकित्सा क्षेत्र में प्रयोग करते थे उसके साथ जुड़ा है।

पंजाब के मौन्ट गोंमरी जिले में 1924ई0 में मोहन जोदड़ों और हड़प्पा की खुदाई हुई थी। उसमें एक मूर्ति शिवजी की ताण्डव नृत्य की मुद्रा में तथा एक नृत्यरत् पुरुष की खण्डित मूर्ति प्राप्त हुई थी एक चित्र में एक पुरुष को व्याघ्र के समक्ष ढ़ोल बजाते हुए अंकित किया गया है। खण्डहरों की दीवारों पर सांगीतिक चित्र भी मिले हैं जिसे अनुमानतः ईसा के पाँच हजार वर्ष पूर्व माना जाता है, जिससे यह स्पष्ट है कि उस काल में भारतीय संगीत मिश्र, यूनान एवं मेसोपोटामिया इत्यादि से श्रेष्ठ था।

वैदिक काल का संगीतः

वैदिक युग का प्रारम्भ भारत में आर्यो के आगमन से माना जाता है। इस काल में ब्राह्मण , क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्गो की स्थापना हो गयी थी। ब्राह्मण ही अन्य तीन

वर्णो को विद्या तथा संगीत का ज्ञान प्राप्त कराता था। इस प्रकार संगीत का पूर्ण बागडोर ब्राह्मणों के हाथ में था स्त्रियाँ भी इस युग में वीणावादन करती थीं तथा सार्वजनिक आयोजनों में भाग लेती थी। समाज इन्हें आदर तथा सम्मान देता था। समाज में संगीतज्ञों का मान सम्मान था। वैदिक युग के संगीतज्ञों का चरित्र उज्ज्वल एवं उच्चकोटि का था। कला की साधना तथा सिद्धि प्रापत करने के लिए प्रलोभनों की जाल में नहीं फँसते थे। कला साधना के लिए वे लोग बड़े से बड़ा आकर्षण तथा प्रलोभन का त्याग करके तपस्वी की तरह आचरण करते थे।

वैदिक काल में गायन, वादन तथा नर्तन का कार्यक्रम खुले प्रांगण में तथा उन्मुक्त वातावरण में उपस्थित जनता विद्वानों तथा राजाओं के समक्ष होता था जिसमें स्त्री व पुरुष दोनों ही भाग लेते थे। समूह नृत्य एवं गायन की भी प्रथा थी। वेद-पद, गद्य और रीति में रचे गये थे। ऋग्वेद पद्यात्मक है। यजुर्वेद अधिकांश गद्य है और सामवेद गीति में है। अथर्ववेद में मारन उच्चाटन आदि का वर्णन प्राप्त होता है।

वैदिक युग के प्रचलित संगीत के अध्ययन को सुविधा के लिए इसे निम्न विभागों में विभाजित किया जाता है:-

(1) ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद में संगीत विषयक वर्णन।

(2) ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषदों में संगीत विषयक वर्णन।

(3) शिक्षा ग्रन्थों, रामायण तथा महाभारत में संगीत विषयक वर्णन।

(4) पुराण, अष्टाध्यायी, अर्थशास्त्र, महाभाष्य तथा वाद्य शास्त्र में संगीत विषयक वर्णन।

(1) ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद में संगीत विषयक वर्णन:

ऋग्वेद:

गायत्री आदि छन्दों के रूप में जिस वेद में कर्म पर अत्यधिक मात्रा में मन्त्रोच्चारण किया जाता है वही 'ऋग्वेद' है। ऋग्वेद में देवताओं और ऋषियों के प्रशास्तिक सूचक ग्रन्थों का संकलन है। ऋग्वेद देव स्तोत्र प्रधान है इन स्त्रोतों का गायन भी होता है और पाठ भी

होता है। अष्टम मण्डल प्रगाथ में 12 सूक्त हैं जिनका स्वरूप राय है प्रत्येक सूक्त के अलग-अलग देवता तथा छन्द हैं। ऋग्वेद में गीत के लिए गीर, मातु, गाथा, गायन, गीति तथा साम शब्दों का प्रयोग पाया जाता है।

ऋग्वेद में वर्णित गीत प्रबंधों में 'गाथा एक विशिष्ट तथा परम्परागित गीत प्रकार है। जिसका गायन धार्मिक तथा लौकिक समारोहों पर किया जाता था।[1] प्राचीन परम्परा पर आधारित होने के कारण इन गाथाओं की तुलना ऋचाओं से की जाती थी।[2]

गाथा और नाराशंसी की सामान्यतः पुराने इतिहास वर्ग के साथ गणना की जाती थी। मूलतः गाथा का अर्थ है 'गीत'[3] गाथा और नाराशंसी 'गीत' प्रकारों को गाने वाले गायकों को 'गथिन' कहा जाता था। ऋग्वेद में 'गायावीन' तथा 'रातुवितम्' शब्दों का प्रयोग गायक के लिए किया जाता है। ऋग्वेद में साम की उत्पत्ति पुरुष प्रजापति से मानी जाती है। ऋचाओं का गान जब किया जाता है तब उन्हें 'साम' कहते हैं। सामगान का उल्लेख ऋग्वेद में अनेक स्थानों में किया गया है। ऋग्वेद काल में सामों के आविष्कर्ता आचार्यो में 'अंगिरस' भारद्वाज तथा 'वशिष्ठ' का नाम उल्लिखित हुआ है।

ऋग्वेद में रीति तथा वाद्यों के साथ नृत्यकला का भी वर्णन प्राप्त होता है। संगीत कला के अन्तर्गत गायन, वादन तथा नर्तन तीनों कलाओं का वर्णन है। प्रारम्भिक अवस्था में संवाद सूक्त 'ऋत्विक' द्वारा यज्ञ यश के अवसर पर गाये जाते थे। इस काल के अवशेष 'जयदेव' कृत 'गीत गोविन्द' में कुछ परिवर्तित रूप में मिलते हैं। छन्दोबद्ध ऋचाओं को स्वरों में गाना 'सामगान' कहलाता है।

1- संगीत शती - जया जैन पृष्ठ-22 तथा 23

2- भारतीय संगीत का इतिहास- पृष्ठ-20

3- वैदिक इण्डेक्स- पृष्ठ 220

सामगान विभिन्न छन्दों में होता था। इन छन्दों में गायन के साथ-साथ वादन भी निरन्तर चलता था।

ऋग्वेद में संगीत को प्रधानता देते हुए विविध प्रकार के वाद्यों जैसे- दुन्दुभि, वाण, नाड़ी, वेणु, ककेरी, गर्गरी, घीणी, पिंगा तथा आघाटी नामक वाद्य का भी उल्लेख मिलता है।[1] वेदगान में ताल के सम्बन्ध में कोई विशेष उल्लेख नहीं प्राप्त है परन्तु चौदह प्रकार के छन्दों का अवश्य उल्लेख किया गया है।

वैदिक कल में स्वरों के नाम उदात्त,अनुदात्त स्वरित प्राप्त होते हैं। वैदिक साहित्य में तीन स्वरों को मान्यता दी गयी है। आर्चिक, गाथिक और शामिक इन्हें स्वरान्त कहा गया है। एक स्वर का नाम आर्थिक दो स्वर का नाम सामिक तथा तीन स्वर का नाम सामिक कहा गया है।

उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित ही कालान्तर में अन्य स्वरों के कारण बने तथा इन्हीं के विकास होने पर 'सामसंगीत' सप्त स्वर बन गया।

यजुर्वेद में संगीतः

यजुर्वेद अधिकांश गद्य में है। यह वेद पूर्णरूप से यज्ञों के क्रियाओं से सम्बन्धित है। अतः इसे कर्मकाण्ड प्रधान वेद माना गया है। इस वेद में यज्ञों और कर्मकाण्ड से सम्बन्धित विस्तृत वर्णन किया गया है। इस वेद के वर्णनों से संगीत विषयक पर्याप्त जानकारी भी प्राप्त होती है।

यजुर्वेद दो भागों में विभाजित है-

1- संगीत का विकास और विभूतियाँ श्रीपद् बन्द्योपाध्याय पृष्ठ-14 संगीत के गौरव ग्रन्थ और शास्त्रकार श्याम बल्लभ मिश्र, पृष्ठ-6

(क) कृष्ण यजुर्वेद अथवा तैत्तिरीय संहिता

(ख) शुक्ल यजुर्वेद अथवा बाजसनेई संहिता

कृष्ण यजुर्वेद से सम्बन्धित तैतिरीय ब्राह्मण है और शुक्ल यजुर्वेद सम्बन्धित शतपथ ब्राह्मण है। कृष्ण यजुर्वेद तथा शुक्ल यजुवेद दोनों ही पृथक-पृथक शाखायें हैं। जिनमें कृष्ण यजुर्वेद की शाखाओं की संख्या अधिक है।[1] जो सात अष्टकों अथवा काण्डों में विभाजित है। मैगडार्वल नामक पाश्चात्य विद्वान का कथन है कि 'शुक्ल यजुर्वेद संहिता' में प्रथम से अट्ठारह अध्याय तक में ही मूलमंत्र प्राप्त हैं।

रायणाचार्य के अतिरिक्त बाल कृष्ण दीक्षित (भट्ट) भास्कर मिश्र आदि ने इस पर भाष्य रचे।

वेदों की प्रत्येक शाखा स्वतंत्र ग्रन्थ के रूप में मिलती है। प्रत्येक शाखा में समग्र वेद का ही स्वरूप मिलता है। प्राचीन काल में वेदों का अध्ययन मुखाग्र रूप में होने के कारण देशकाल आदि के भेद से इनमें 'पाठभेद' हुआ है। जिनके कारण अनेक शाखायें प्रचलित हो गयीं।

यजुर्वेद में यद्यपि संगीत से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है फिर भी संगीत से सम्बद्ध अनेक उल्लेख यजुर्वेद और तत्सम्बंधी वैदिक साहित्य में प्राप्त हो जाते हैं। जिसमें इस तथ्य का निर्देश मिलता है कि यजुर्वेद काल में संगीत का पर्याप्त प्रचार व प्रसार था। इस वेद में स्थानतर, वैरूप, वैश्वानर, वामदेव, शाक्वर,इवैता, अभिकृत इन सात प्रकार के सामों का उल्लेख किया गया है। इसमें से कई साम किसी ऋतु विशेष में गाये जाते हैं।[2] जैसे-

1- रथन्तर सामत्रिवृत्स्तोमो वसन्त ऋतु

2- वृहत्साम पंचदेशोतोमो ग्रीष्म ऋतु।

1- भारत की सांस्कृतिक परम्परा-इन्द्रमणि मिश्रा- पृष्ठ-14

2- संगीत का विकास और विभूतियाँ -श्रीपद वन्द्योपाध्याय-पृष्ठ-15

3- वैरूपंसाम सप्तदशस्तोमो वर्षा ऋतु।

4- शाक्वरे रवैते सामनीस्तोमो वर्षा ऋतु हेमन्त ऋतु।

(निरक्त- 7/3/6 भारतीय संगीत का इतिहास पृ0 307)

वाजसनेई संहिता में सूत, शलूष, नृतक गायक वीणावादक, शंखवादक, काहल वादक, दुन्दुभिवादक तथा 'गणक' और 'पाणिध' नामक मात्रा की गिनती करने वाले और हाथ से ताल देने वालों का वर्णन है। तथा उस काल से भिन्न-भिन्न प्रकार के वीणाओं का भी वर्णन है।

शुक्ल यजुर्वेद में शाख्य के 127 सूत्रों से सप्त स्वरों का वर्णन भी प्राप्त होता है। शुक्ल यजुर्वेद के भाष्यकार उवट, माधव, अनन्तदेव, आनन्द भट्ट, माहेश्वर आदि हैं।

इसमें उल्लेख गायक वादकों के नाम दास दासियों द्वारा नृत्य प्रथा, सामूहिक गान की प्रथा, स्त्रियों द्वारा वीणा तथा कण्ठ गायन करना, ऋतु के अनुसार सामों का वर्णन तथा ताल देने वालों का वर्णन इस बात का संकेत करता है कि यजुर्वेद, कर्मकाण्ड प्रधान अवश्य था परन्तु इस काल में भी संगीत की यथास्थान मान्यता प्राप्त थी। साथ ही साथ यज्ञों के समय संगीत गायन वादन का भी प्रयोग होता था।

सामवेद में संगीतः

यज्ञ के समय देवताओं को एक विशिष्ट आराधना द्वारा वेद के मंत्रों को गायन द्वारा प्रस्तुत करना 'सामवेद' कहते है। सामवेद की रचना ऋग्वेद के उपरान्त हुई। इतिहासकारों का कहना है कि सामवेद का समय ईसा से 2500 वर्ष पूर्व हुआ था।[1]

ऋग्वेद की गेय ऋचाओं और मंत्रों को एक स्थान पर संकलन करके संकलित ग्रन्थ का नाम 'सामवेद' रखा गया। ऋचाओं की उपयोगिता और प्रयोग के आधार पर ही सामवेद में उनका सुलभ संग्रह किया गया था। सामवेद में 'अग्नि' 'इन्द्र' और सोमदेव पर ही अधिक

1- संगीत का विकास एवं विभूतियाँ श्रीपद् वन्द्योपाध्याय पृष्ठ-15

ऋचायें हैं। सामवेद की 75 ऐसी ऋचायें हैं जिनका किसी दूसरी संहिता में उल्लेख नहीं है। सामवेद के अधिकांश मंत्र ऋग्वेद से ही उद्धृत हैं।

सामवेद को उपासना काण्ड के नाम से जाना जाता है उपासना के द्वारा वेद मंत्रों का गायन होता था। सामवेद का ब्राह्मण 'सामब्राह्मण' या सामवेदी ब्राह्मण कहा जाता था। छान्दोग्य उपनिषद में सामवेद द्वारा उपासना करने की विधि का वर्णन है।

सामवेद का संगीत से सीधा सम्बन्ध है विद्वानों का मानना है कि समस्त संगीत की सृष्टि का श्रेय सामवेद को है। इस वेद के कारण संगीत कला की अधिक उन्नति हुई। सामवेद की ऋचाओं में गायन का चरम विकास हुआ। सामवेद में नृत्य, गायन तथा वाद्यों का उल्लेख मिलता है। कालान्तर में सामवेद दो भागों में विभक्त हो गया। 'आर्थिक' तथा 'गान'।

आर्चिक के दो भाग हैं- ⟮1⟯ पूर्वाचिक ⟮2⟯ उत्तरार्चिक।

सामवेद के प्रत्यक्ष गायन के दो रूप हैं- ⟮1⟯ स्वरूप ⟮2⟯ रूपान्तर सामवेद का दूसरा भाग गान कहलाता है। इसके ग्रन्थ 'गान ग्रन्थ' कहे जाते हैं। मंत्रों का संग्रह तथा संगीतात्मक रीति से उच्चारण करना 'गान' कहलाता था।

सायणाचार्य ने सामभाष्य की भूमिका में साम को गान का द्योतक बताया है तथा इनके अनुसार देवों का वास्तविक आश्रय स्थान 'साम' ही है।[2]

साम का छन्दोबद्ध गीतों में गान होता था अर्थात सामगान विभिन्न छन्दों में होता था। इस हेतु प्रयुक्त होने वाले 'गायत्र' 'साक्वर' 'रवैत' 'वैरूप' आदि छन्दों का उल्लेख मिलता है। पाणिनि के अनुसार 'साम' दृष्टि साहित्य है। वैदिक काल में यज्ञ आदि के अवसरों पर सामगान आवाश्क माना जाता था।

वैदिक काल में साम गान और पाठ एक ही श्रेणी के अन्तर्गत माने जाते थे। साम

1- वैदिक परम्परा में सामगान अनुवाद मदन लाल व्यास।

2- भारतीय नाट्यशास्त्र तथा हिन्दी नाट्य विधान पृष्ठ-238

स्तोम या स्त्रोत का कार्य करने का अर्थ स्वर में पाठ का आवृत्ति करना था। ऋचायें स्तोम कहलाती थी। सामगान में तीन स्तोम हैं- वर्णस्तोम, पदस्तोम तथा वाक्यस्तोम। साम के प्रस्ताव, प्रतिहार, उद्गीथ ये तीन मुख्य भाग थे तथा हिंकार, उपद्रव और निधन यह तीन विधान थे। उपरोक्त अंशों के निम्नलिखित गाने वाले नियुक्त होते थे।

सामवेद का उपवेद 'गान्धर्व वेद' है। जिसमें सामगान के नियमों का संकलन किया गया है। इस वेद को स्थूल रूप से पूर्वगान और उत्तरगान इन दो भागों में बॉटा गया था। पूर्वगान के दो भाग - 'ग्रामगेय गान' और 'आरण्यक गान' कहलाते थे। उत्तरगान के अन्तर्गत 'उहगान' तथा 'अहामगान' आते थे।[1]

सामगान का आरम्भ 'ऊँ' के उच्चारण से हुआ था। इस गायन में एक प्रधान गायक होता था जिंसे 'उद्गता' कहते थे। उद्गाता के सहायक गायकों को 'प्रस्तोता' या उपगाता कहते थे। सामगान के 'संगतिवाद्य' के रूप में वीणा प्रमुख वाद्य था। इस गान में छन्दों और लय के प्रयोग का विस्तृत वर्णन मिलता है। वैदिक वांगमय में ताल वाद्यों का वर्णन मिलता है परन्तु ताल वर्णन नहीं है। मात्रा गिनती करने वाले 'गणक' नामक कलाकार का नाम मिलता है। 'स्वर शुद्धि' सामगान का मूल आधार था। सामगान में सामवेद में उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित इन तीन स्वरों का वर्णन किया गया है। सामवेद का गान उस युग में तीन ही स्वरों में होता था। फिर चार स्वरों में भी होने लगा। भाष्यकार उवट का कथन है कि -मन्द्र मध्य, तथा उत्तम की उत्पत्ति क्रमशः हृदय ,कण्ठ तथा शिरोभाग से होती है। सामवेद में पहले तीन स्वर फिर चतुर्थ फिर कुष्ट मन्द्र और अतिस्वार का समावेश हुआ। इन स्वरों के नाम इस प्रकार प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र, कुष्ट तथा अविस्तार थे। 'ब्राह्मण ग्रन्थ' सप्तस्वरों के प्रयोग का काल

1- भारत की सांस्कृतिक परम्परा- पृष्ठ- 92-93

ईसा से 2500 वर्ष पूर्व से 1400 वर्ष पूर्व तक का काल है। सामवेद के प्रधान स्वर को 'प्रकृत स्वर' तथा सहयोगी स्वरों को 'विकृत स्वर' कहते थे। स्वरों के उच्चारण के लिए लिपि संकेत भी थे। जिसके अनुसार स्वरों का दीर्घ उच्चारण , मृदु उच्चारण तथा स्वरों को खींचकर उच्चारण आदि होता था। भारतीय संगीत के इतिहास में संगीत के महत्व पर प्रकाश डालने, वाला सामवेद प्रथम ग्रन्थ है । सामगान की प्रथा ऋग्वेद काल में भी थी परन्तु स्वरों को क्रमबद्ध वृद्धि, मात्रा गिनने वाले कलाकारों का नाम उद्गाता नामक गायक का नाम वीणा द्वारा सामगान की संगति और स्वरों का विराम चिन्ह आदि का वर्णन सामवेद में ही प्राप्त है।

सामवेद का मुख्य विषय उपासना है। मंत्रों को गाकर ईश्वर को प्रसन्न करना ही सामवेद संगीत का प्रथम ग्रन्थ सिद्ध करने में सहायक है।

(2) ब्रह्मण आरण्यक तथा उपनिषदों में संगीत विषयक वर्णन:

ब्राह्मण:

ब्राह्मण साहित्य धार्मिक साहित्य है। ब्राह्मण काल के अन्तर्गत ब्राह्मण, आराण्यक तथा उपनिषद , इन तीन प्रकार के ग्रन्थों का समावेश है। सामवेद के ब्राह्मणों में ताण्य तथा जैमिनीय ब्राह्मण मुख्य है। जैमिनीय शाखा का प्रचार कर्नाटक के तिन्नेवेली और तंजौर जिले में पाया जाता है।

ऋग्वेद से सम्बन्धित ब्राह्मणों में संगीत विषयक वर्णन:

ऋग्वेद के शाखायन ब्राह्मण के अनुसार गायन, वादन और नृत्य, इन तीनों कलाओं के शिल्पों का प्रयोग प्राय: अभिन्न साहचर्य के रूप में प्राप्त होता है। ऋग्वेद से सम्बन्धित ब्राह्मण में स्वरयुक्त वीणा को निम्न प्रकार से उल्लेख है- कौशितकी ब्राह्मण काल में पुरुष और स्त्रियाँ समान भाव से देवोपासना हेतु गायन वादन तथा नृत्य करना नैतिक कर्तव्य समझते थे।

यजुर्वेद से सम्बन्धित ब्राह्मणों में संगीत विषयक वर्णनः

यजुर्वेद की शुक्ल शाखा का शतपथ ब्राह्मण अैर कृष्ण शाखा का तैतिरीय ब्राह्मण मुख्य है। शतपथ ब्राह्मण स्वयं रचित गाथाओं के गायन का स्पष्ट उल्लेख है। शतपथ ब्राह्मण की त्रयोदश कण्डिका में "वीणागणगिन" संज्ञा का उल्लेख है। जिसकी व्याख्या सायण ने इस प्रकार की है कि तीन, सात तथा सौ तारों से युक्त वीणा वादन की शिक्षा जब गुरु के द्वारा होती है तो वह 'वीणागणगिन' कहलाता है। शतपथ ब्राह्मण में सामगान में मन्द्र, मध्य और स्थानों के प्रयोग का उल्लेख है। शास्त्रीय संगीत के विषय में सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रमाण त्रयोदश कण्डिका में निहित है। जहाँ 'उत्तरमन्द्रः' संगीत का शास्त्रीय एवं परिभाषिक शब्द है। मूर्च्छना का भी उल्लेख हुआ है। तैतिरीय ब्राह्मण में गणक नाम से तालधारियों का उल्लेख है। "वीणा वादकं गणकं गीताय"[1] इस ब्राह्मण में तन्तु वाद्यों के प्रसंग में ह्रायधाटलिका, काण्वीणा, पिच्घोल, स्तंवल वीणा, तालुक वीणा, गोधावीणा, अलाबु और ककीरिका आदि का उल्लेख है। वीणा को श्री रूप माना है।

सामवेद से सम्बन्धित ब्राह्मण में संगीत विषयक वर्णनः

कुमारिल भट्ट के अनुसार सामवेद के आठ ब्राह्मण थे। सामवेद के ब्राह्मणों में ताण्य तथा जैमिनीय ब्राह्मण मुख्य हैं। सामवेद के जैमिनीय शाखा का जैमिनीय ब्राह्मण आधुनिक समय में भी उपलब्ध हैं। जिसमें सामगान के विधि का पर्याप्त परिचय मिलता है। इन ब्राह्मण में सामगान के उद्गाता और उद्गाताओं द्वारा वीणा की सहायता से ज्ञान किये जाने का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त कर्करी, अलाबु, वक्रा, आपघाटलिका, कच्छपी वीणा के उल्लेख के साथ वाण वाद्य की वादन विधि तथा रचना का भी इस ब्राह्मण में उल्लेख हुआ है। जैमिनीय

1- तैत्तिरीय ब्राह्मण- अ० 15

2- भारतीय वाद्यशास्त्र तथा हिन्दी वाद्यशास्त्र पृष्ठ- 235-236

ब्रह्मण में गायत्र साम का वर्णन है इसी से इसे गायत्र उपनिषद भी कहा जाता है। सामगान के अन्तर्गत सप्तस्वरों का विकास उस समय तक हो चुका था।[1] ब्राह्मणों के प्रतिपादित वर्णनों और अन्य स्रोतों से यह स्पष्ट होता है कि ईसा से 1500 वर्ष पूर्व से भारतीय संगीत में साम सप्तस्वरों का प्रयोग वाद्यों का प्रयोग आदि का विधिपूर्वक प्रचार था। जिसका प्रमाण ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राप्त होता है।

संगीत के क्रमिक विकास में ब्राह्मण ग्रन्थों का यथेष्ट योगदान रहा है।

आरण्यक:

आरण्यक को ब्राह्मण साहित्य का उत्तर भाग समझना चाहिए। यक्ष से सम्बन्धित दार्शनिक तत्वों का विवेचन आरण्यकों में प्राप्त होता है। ऋग्वेद के ऐतरेय तथं कौशितकी आरण्यक है। कृष्ण यजुर्वेद से सम्बन्धित तैत्तिरीय आरण्यक हैं। सामवेद का आरण्यक संहिता के अन्तर्गत है। आर्चिक्र तथा उसके आधार पर गाये जाने वाले, गीत आरण्यक हैं। इसके गान को रहस्यगान भी कहा जाता है। आरण्यक गान का विकृत स्वरूप होने से अर्ध्यगान को 'रहस्यगान' कहा जाता है।[2]

ग्रामगान आरयण्क गान की अपेक्षा अधिक संस्कारशील है। आरण्यक काल की प्रगति इस बात में है कि तव सामगान में तीनों सप्तकों का प्रयोग होने लगा था। बड़े-बड़े अन्तरालों के बीच नये नये स्वरों का प्रवेश होता रहा। यह बात आरण्यकक गान की सीमा का द्योतक है। इस बात की पुष्टि पाणिनी तथा याज्ञवल्क्य के ग्रन्थों में होती है। आरण्यक गान सामगान का ही एक भाग था। आरण्यक गान में सामवेद

1- जैमिनीय ब्राह्मण, सम्पादक रघवुरी, पृष्ठ-15

2- वैदिक साहित्य- बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ 149-150

के पदों के स्थान पर भिन्न भिन्न पदों,गद्यों तथा साहित्य का उपयोग होता था। इस काल में षड्ज, मध्यम तथा पंचम यह तीन स्वर ही व्यवहार में लाये जाते थे।

उपनिषदों में संगीत विषयक वर्णन:

उपनिषदों की रचना ब्राह्मण ग्रन्थों के परिशिष्ट के रूप में हुई है। प्रत्येक वेद से सम्बन्धित उपनिषद हैं जिसमें वेदों की प्रकृति के अनुसार संगीत विषयक वर्णन प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद के उपनिषद- कौशितकी ऐतरेय, शाक्ल तथा मैत्राणी हैं। यजुर्वेद के उपनिषद तैतिरीय तथा ईशोपनिषद हैं। सामवेद के उपनिषद छान्दोग्य तथा केन हैं।

उपनिषदों में ब्रह्म विद्या की पराकाष्ठा प्राप्त होती है। उपनिषदों में संगीत के तत्व और सिद्धान्त भी उपलब्ध हैं। उपनिषदों के अन्तर्गत ऋक तथा साम का सुन्दर सामंजस्य माना गया है। यजुर्वेद से सम्बन्धित तैतिरीय उपनिषद में संगीत शिक्षा की व्याख्या तथा उसके अन्तर्गत विषयों का वर्णन सर्वप्रथम प्राप्त होता है। सामवेद से सम्बन्धित छान्दोग्य उपनिषद में साम की विशुद्ध उपासना करने की विधि का वर्णन है। छान्दोग्य उपनिषद में ही हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीय प्रतिहार एवं निधन साम के इन पाँचों भागों का उल्लेख है। साम का सार छन्दोग्य उपनिषद में 'उद्गीथ' तथा 'ओम' (ऊँ) ध्वनि में है। छान्दोग्य के अनुसार ऋक पाठ और स्वर प्राण है।

संहिता तथा उपनिषद काल में वेदोस्त ऋचायें एक स्वर से गाथा दो स्वरों से तथा सामगान तीन स्वरों से गाया जाता था। सात स्वरों के नाम छान्दोग्य उपनिषद में- विनार्द, अनिरुद्ध, निरुद्ध, मृदु, लक्षण, कौंच तथा अपध्वन्त साम गाने के स्वर बताये गये हैं।

शिक्षा ग्रन्थों में संगीत विषयक वर्णन:

विविध वेदों के स्वर वर्ण आदि के उच्चारण विधि की शिक्षा जिन ग्रन्थों

द्वारा प्राप्त होती है वही शिक्षा ग्रन्थ कहलाते हैं। शिक्षा ग्रन्थ भिन्न-भिनन समय के मनीषियों द्वारा अलग-अलग समय में रचे गये। शिक्षा ग्रन्थों का सम्बन्ध मूलतः प्राचीन 'ध्वनि विज्ञान' से है। शिक्षाओं में माण्डु की शिक्षा पणिनी शिक्षा नारदीय शिक्षा तथा याज्ञवल्क्य आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। शिक्षा ग्रन्थों में सप्त स्वरों का नाम सर्वप्रथम प्राप्त होता है जैसे- षड्ज, ऋषभ, गान्धार मध्यम पंचम धीवत तथा निषाद स्पष्ट रूप से प्राप्त होते हैं। षड्ज , मध्यम और गान्धार,तीन ग्रामों की चर्चा शिक्षा ग्रन्थों में हुई है।

माण्डु की शिक्षाः

माण्डुक ऋषि द्वारा इस ग्रन्थ की रचना हुई है। इनका रचना काल याज्ञवलक्य शिक्षा के उपरांत तथा पाणिनी शिक्षा के पूर्व माना जाता है। इस शिक्षा में षड्खादि सप्त स्वरों की उत्पत्ति उदात्तादि तीन स्वरों से बताई गयी है। माण्डु की शिक्षा के अनुसार सामगान में सप्तस्वरों का प्रयोग था।

नारदीय शिक्षाः

समस्त शिक्ष वांगमय में नारदीय शिक्षा का संगीत की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें प्राचीन संगीत के सभी तत्व उपलब्ध होते हैं। इसे वैदिक संगीत का व्याकरण माना जाता है। नारदीय शिक्षा में ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदों के विभिन्न शाखाओं के द्वारा प्रयुक्त स्वरों का वर्णन प्राप्त है लेकिन कोमल स्वर की चर्चा नहीं है। इसमें स्वर सम्बन्धी शास्त्रीय विवेचन प्राप्त हैं। इसके अनुसार स्वरों का विकास हो तथा तीन स्वरों से क्रमशः होता रहा है।

नारद के अनुसार यह 'आर्चिक , गार्थिक तथा सामिक' संज्ञा से प्रसिद्ध है। नारदीय शिक्षा में चार स्वरों के गान का महत्वपूर्ण उल्लेख प्राप्त होता है। नारद

के अनुसार सम्पूर्ण स्वर शास्त्र का निष्कर्ष इस बात में निहित है कि स्वर ऊँचे और नीचे की अवस्था से अन्य अन्य स्वरान्तरों का कारण बनता है।

नारदीय शिक्षा में सात स्वर इक्कीस मूर्छना, उन्चास तानें, ग्राम, ग्राम राग, ताल आदि का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। नारद ने प्रत्येक ग्राम की अलग अलग तानों को बताई हैं। नारदीय शिक्षा की तीसरी खण्डिका में गान के दस गुणों का उल्लेख हुआ है। चौथी खण्डिका में स्वर, वर्ण, जाति, सप्तसुर, ग्राम, राग आदि का उल्लेख है। छठीं खण्डिका में गान वीणा, श्रुति, श्रुति की पाँच जातियाँ आदि का वर्णन है।[1] सातवीं खण्डिका में साम स्वरों के अन्तर्गत स्थान उनकी गान वीणा पर स्थिति आदि का वर्णन है। नारदीय शिक्षा में संगीत के प्राचीन सभी तत्व उपलब्ध हैं।

रामायण तथा महाभारत में संगीत विषयक वर्णन:

नादर ने छान्दोग्य, उपनिषद के अन्तर्गत 'ऋग्वेद भगकोध्येमि यजुर्वेदं सामवेद-मर्थणम् इतिहास पुराण पन्चमं वेदानां वेदम्" 7/1 कहकर इतिहास पुराण को पंचम वेद कहा है। रामायण तथा महाभारत इसी इतिहास साहित्य के दो अनुपम पुष्प हैं।

रामायण काल:

रामायण भारत का प्राचीन महाकाव्य है। भारत की प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा तथा परिज्ञान का महत्वपूर्ण स्रोत है। प्राचीन वांगमय के अन्तर्गत महाकाव्यों की परम्परा में सर्वप्रथम उल्लेखनीय ग्रन्थ 'रामायण' और उसके बाद 'महाभारत' महाकाव्य है। दोनों ही उत्तर भारत वैदिक कालीन ग्रन्थ हैं। 'वाल्मीकि रामायण' भारत की प्राचीन ऐतिहासिक

1- भारतीय संगीत का इतिहास - पृष्ठ 111, 114, 117

संकेत- यह विशेष ध्यान देने योग्य है कि संहिताकार नारद तथा शिक्षाकार नारद के अतिरिक्त एक और नारद हुए हैं जिन्होंने 'संगीत मकरंद' नामक ग्रन्थ की रचना की है। उपरोक्त में शिक्षाकार नारद का वर्णन किया गया है।

तथा सांस्कृतिक परम्पराओं का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस महाकाव्य में तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक तथा सभी पक्षों का सुन्दर वर्णन है। बाल्मीकि रामायण का निर्माण 'गेय काव्य' के रूप में हुआ इस काव्य में संगीत विषयक उन्नति तथा प्रसार का दर्शन होता है। रामायण में गायन, वादन तथा नर्तन इन शब्दों का अत्यधिक उल्लेख प्राप्त है। संगीत , कला को रामायण काल में राजाश्रय प्राप्त तथा राज्य में कलाकारों का अच्छा सम्मान किया जाता था। संगीत गायन तथा उनका प्रशिक्षण सम्बन्धी चर्चा अनेक स्थानों में किया गया है। ललित कलाओं की शिक्षा एवं प्रश्रय में राज्य सहायता प्रदान करता था। संगीत के व्यवसाय करने वाले लोगों में गायक, सूत, मागध तथा वारांगनाओं का समावेश है। रामायण काल में कालाकारों के वर्गो का भी उल्लेख है जैसे- देव, दानव, गन्धर्व तथा किन्नर आदि। गन्धर्व संज्ञा गायन के लिए प्रचलित था। वादन तथा नृत्य को गायन के आश्रित माना जाता था।[1] लोक कलाकारों का भी अच्छा स्थान था।

महर्षि वाल्मीकि ने लवकुश को गायन तथा वीणा वादनका पूर्ण ज्ञान दिया था। रामायण काल में लवकुश को गायन विद्या में निपुण तथा स्वर, ताल मूर्च्छना में दक्ष माना गया है। वाल्मीकि रामायण में स्वर, मूर्च्छना, त्रिस्थान, जाति, ताल एवं लय आदि का वर्णन है। षड्ज मध्यम ग्राम तथा जातियों के गायन का वर्णन है। तत वाद्यों में वीणा, त्रिपंची, मतकोकिला, अवनद्ध वाद्यों में सभी प्रकार के ढोल सम्बन्धी वाद्य मेरी, दुन्दुभि , मृदंग, पटह, मण्डूक, डिमडिम सुपिर वाद्यों में वेणु शंख का वर्णन आता है।

1- भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ-139

इस काल में गायन के अतिरिक्त वादन को भी महत्व दिया जाता था।[1] वाद्यों के लिये 'सूय' संज्ञा प्रचलित था। सूर्य में सभी प्रकारों के वाद्यों का समावेश था। इसके अतिरिक्त 'अतोदय' तथा 'वादित्य' इन दो संज्ञाओं का भी प्रयोग होता था।

तत्कालीन वीणा सर्वोपरि प्रचलित वाद्य था। इस काल में गन्धर्व के अन्तर्गत श्रुति तथा स्वर का वैज्ञानिक विवेचन प्रारम्भ हो चुका था। स्थान ताल, लय, प्रमाणकरण और इसका अन्तर्भाव गन्धर्वा के अन्तर्गत किया गया है। राग शब्द का प्रयोग रामायण में हुआ है। वैदिक साहित्य और उपनिषदों में जिन श्रुतियों की मात्र चर्चा हुई थी उनका प्रयोग रामायण यग में होने लगा था। वैदिक काल में सात स्वरों का विकास हुआ तथं रामायण काल में काकली निषाद और अन्तर गान्धार इन दो सवरों का विकास हुआ।

यह कहना अनुचित न होगा कि रामायण संगीतमय महाकाव्य है। रामायण भारत के अतिरिक्त सम्पूर्ण विश्व का महाकाव्य है।

महाभारत काल:

महाभारत महाकाव्य का रचनाकाल ईसा से 1000 से 1500 वर्ष पूर्व का काल माना जाता है। इस काल में कहीं भी संगीत शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। अपितु गन्धर्व शब्द ही संगीत विद्या के लिए प्रयोग किया जाता है। महाभारत में संगीत वैदिक और पौराणिक काल की अपेक्षा कहीं अधिक विकसित अवस्था में था। इसमें वैदिक संगीत

1-

वत वाद्य	काण्ड	सर्ग	श्लोक
1- वीणा	अयोध्या	39	29
2- त्रिपंची	किष्किन्धा	1	15
3- मतकोकिला	सुन्दर	10	41
अवन्त वाद्य			
1- दुन्दुभि	युद्ध	42	39
2- मेरी	युद्ध	44	12
3- पटह	सुन्दर	10	29

के अतिरिकत गान्धर्व जैसे लौकिक गान के प्रचार के सम्बन्ध में प्रचुर प्रमाण प्राप्त होते हैं। लौकिक गीतों के साथ वीणा वादन की संगति की भी प्रथा थी। महाभारत में वैदिक तथा लौकिक दोनों ही संगीत प्रणालियों का प्रचलन था। इस काल में राज स्त्रियों तथा महिलाओं को संगीत शिक्षा देने के लिए वृद्ध गुणी व्यक्तियों को रखा जाता था। राजाओं के सभागार में तथा अन्तःपुरी में संगीत के गायन, वादन तथा नर्तन का पर्याप्ति प्रचलन था। राज्य कन्यायें भी संगीत शिक्षण ग्रहण करती थीं। महाभारत काल में गेय प्रबन्धों के अन्तर्गत साम, गाथा तथा मंगल गीतियों का उल्लेख मिलता है तथा लौकिक उपाख्यान वीरगीतों के रूप में मिलते हैं। इन गीतों का प्रचार मागध सूत चारण आदि लोक गायकों के द्वारा होता था। संगीत सम्बन्धी शास्त्रीय विवेचन भी प्राप्त है जैसे- लय, ताल,स्थान, मूर्च्छन, स्वर आदि। इस काल में गीत, वादन नृत्य तथा नाच्य आदि का उत्सवों के अवसर पर प्रयोग होता था। उत्सवों में गायकों के साथ गायिकायें भी भाग लेती थीं।

महाभारत काल में चारों प्रकार के वाद्यों का प्रयोग होता था वादित्र के अन्तर्गत- तत, वितत धन और सुषिर द्रुम चतुर्विध वाद्यों का वर्णन है। इस काल में मृदंग, शंख, भेरी, पणव, गोमुख, मुरज, पुष्कर, आडम्बर,डिमडिम, तोमर आदि वाद्यों का प्रचलन था। इन वाद्यों का प्रयोग गायन, वादन तथा नर्तन में होता था।[1] युद्ध के अवसर में भी

मृदंग	सुन्दर	10	42
डिण्डिम	,,	10	44
पणव	,,	10	43
मुरज	,,	11	6
सुषिर वाद्य			
वेणु	किष्किन्धा	30	50
शंख	युद्ध	42	39

1- प्राचीन भारत में संगीत , पृष्ठ-40

वाद्यों का प्रयोग होता था। इस युग की विशेषता यह है कि सर्वप्रथम ऋचक तथा किकिला वाद्यों का वर्णन मिलता है। गायन तथा वाद्यों का स्वतंत्र प्रयोग होता था। हाथ से ताल देने का उल्लेख पाणिस्वर के रूप में मिलता है झर्झर, करताल आदि घन वाद्यों का भी ताल लय में प्रयोग होता था।

साहित्य के साथ साथ महाभारत काल में संगीत का भी अत्यधिक उत्थान हुआ। संगीत जैसे शास्त्रीय शब्द, ग्राम, मूर्च्छना, स्वर, गोत, गाथा तथा प्रबन्धों आदि की व्याख्या महाभारत काल में हुआ।[1] इस काल में संगीत केवल देवोपासना तक सीमित न रहकर जनता के मनोरंजन तथा शिक्षा का विषय रहा है। इस काल में संगीत सम्भावित तथा उन्नत अवस्था में थी। इस युग में संगीत स्त्रियों तथा पुरुषों में समान रूप से प्रयोग में था। अश्वमेघ यज्ञों में मनोरंजन के निमित्त गाथा, गान तथा वीणादि वाद्यों का वादन होता था।

शतपथ ब्राह्मण से ज्ञात होता है कि यज्ञ में नियुक्त गायक उत्तम, प्रबंधकार, वादक तथा श्रेष्ठ गायक होते थे। अभिजात कुल की स्त्रियों को गायन वादन की शिक्षा दी जाती थी, जिससे वे साम गायकों की संगति सहज रूप में करती थी। निम्नकुल की महिलाओं का लोकनृत्य यज्ञादि समारोहों पर सम्पन्न होता था।

आर्यों ने संगीत में पवित्रता लाने के लिए इसे धर्म के आवरण में लपेट दिया। फलस्वरूप संगीत और धर्म का एकीकरण हो जाने में संगीत, सर्वश्रेष्ठ पवित्रतम बन गया। इसलिए भरतीय सिंगीत ने मानव को कभी भी नैतिकता के उच्च स्तर से नीचे नहीं आने दिया। परन्तु आगे चलकर आर्यो के जीवन का सम्भवतः कोई ऐसा क्षेत्र नहीं बचा था जिसमें संगीत ने प्रवेश न किया हो। बच्चे के जन्म संस्कार से लेकर अन्तिम यात्रा

1- भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ 16।

तथा सभी स्थानों में संगीत का उपयोग होता था। इन लोगों ने देवताओं को प्रसन्न करने का एक मात्र साधन संगीतमय स्तुति तथा प्रार्थना को ही माना है।

रामायण में एक वर्णन में जब लक्ष्मण जी सुग्रीव के अन्त:पुर में प्रवेश करते हैं तो वहाँ वीणा वादन के साथ शुद्ध गायन सुनते हैं। रावण भी संगीत शास्त्र का प्रकाण्ड विद्वान था 'महाभारत' में सात स्वरों तथा गान्धार ग्राम का वर्णन मिलता था। रामायण एवं महाभारत इन दोनों ही ग्रन्थों में संगीत तथा वाद्य यंत्रों का विशेष उल्लेख मिलता है जैसे- मेरी, दुन्दुभि, मृदंग, घट, डिंडिम, मुद्दुक आदंबर तथा वीणा आदि । इससे यह विदित होता है कि रामायण एवं महाभारत काल में भी संगीत का अच्छा प्रचार रहा। वाल्मीकि रामायण लगभग ईसा से 400 वर्ष पूर्व लिखी गयी। विद्वानों का मत है कि इस काल में संगीतज्ञों की प्रतिष्ठा वैदिक काल की भाँति ही थी। विवाहोत्सव पर तथा युद्धों में विजय के उपरांत दुन्दुभि बजाई जाती थी। धनुष यज्ञ में देवताओं द्वारा दुन्दुभि अप्सराओं द्वारा गायन तथा नृत्य होता था। रंग बिरंगों फूलों की वर्षा होती थी। सीता जी ने रामचन्द्र जी के गले में जयमाला पहनाई तो वातावरण संगीत और नृत्य से गूँज उठा।

<u>महाभारत कालः</u>

महाभारत काल में भगवान श्री कृष्ण संगीत के महान पण्डित थे। इन्हीं के द्वारा रास लीला- नृत्य का निर्माण हुआ। सामान्य तथा उच्चवर्गीय लोगों की संगीत से प्रेम था। महिलायें पौराणिक काल से भी अधिक गाने बजाने तथा नाचने में अनुरागिनी हो गयी थी। प्रत्येक सुअवसरों पर संगीत होता था। विद्वानों का मानना है कि महाभारत काल का संगीत उत्तमता की पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था। श्रीकृष्ण की वंशी में विचित्र जादू था। नर-नारी पशु-पक्षी सभी मुग्ध हो जाते थे।

पुराण,अष्टाध्यायी, अर्थशास्त्र, महाभाष्य तथा नाट्यशास्त्र में संगीत विषयक वर्णनः

पुराणः

रामायण काल के बाद पौराणिक काल आता है। पुराणों की रचना ईसा से 400 वर्ष पूर्व तथा ईसा काल के आरम्भ के बीच में हुई। इसके रचना काल में मतभेद है। पुराणों के अध्ययन से यह पता चलता है कि इस युग में भी संगीत उन्नत अवस्था में थी। पुराणों की कुल संख्या 18 बताई गयी है। अत्यन्त प्राचीन घटनाओं के वर्णन के कारण ही इस साहित्य को 'पुराण' नाम से जाना जाता है।[1] पुराण प्राचीन साहित्य के इतिहास का वर्णन करता है। जिन आख्यानों का वर्णन मुखाग्र रूप से प्रचलित रहा उनका संकलन भी पुरुष वांगमय में प्राप्त है। प्राचीन ऋषियों के जीवन का परिचय पुराणों से प्राप्त होता है। पुराण इतिहास तथा सामाजिक कृति का परिचायक है। इसके अध्ययन से तत्कालीन समाज का स्वरूप उपलब्ध होता है। पुराणों में संगीत के तीनों (गायन, वादन, नर्तन) अंगों का उल्लेख पाया जाता है। पुराणों से यह बात विशेष रूप से दृष्टिगत होती है कि यज्ञों के साथ संगीत घनिष्ट रूप से सम्बद्ध था।[2] इसमें तीनों भागों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। वाद्यों का भी उल्लेख है। इसमें वर्णित संगीत सम्बंधी वर्णन अपना विशेष स्थान रखते हैं। पौराणिक काल में सातों स्वरों का व्यवहारिक, प्रयोग था।

वायु पुराणः

पूराणों में वायु पुराण प्राचीनतम् पुराणों में से है। इस पुराण के छियासी तथा सत्तासी अध्यायों में संगीत विषयक सामग्री से स्पष्ट है कि ईसवी की प्रारम्भिक शताब्दी

1- भारत की सांस्कृतिक परम्परा, पृष्ठ-27

2- प्राचीन भारत में संगीत, पृष्ठ-288-289

तक संगीत शास्त्र का पर्याप्त विकास हो चुका था। इसमें चार वर्णो का भी उल्लेख है। वायु पुराण में इन्द्र के अश्वमेघ यज्ञ में आगमों के सस्वर गायन का उल्लेख है। संगीत का सम्बन्ध गान्धर्व, अप्सरा और किन्नरों से बताया गया है। वायु पुराण में सप्तस्वरों का वर्णन पूर्व वर्णनों के समान प्राप्त है। वायु पुराण के अध्याय 86 तथा 87 में सात स्वर, तीन ग्राम, 21 मूर्च्छनायें, 49 तानों, स्थान, वर्ण, वर्णालंकार ,मन्द्र, मध्य, तार स्वरों का विभाजन आदि सामग्री प्राप्त है। वाद्यों में भेरी, डिमडिम, दुन्दुभि, गोमुख, झरझर, मृदंग, पणव, पटह, शंख, तुम्ब, वीणा, और वेणु वाद्यों का उल्लेख[1] मिलता है। वायु पुराण में सामगान के बारे में भी उल्लेख है।

मार्कण्डेय पुराण:

इसमें ऋक, यजु तथा साम का सम्पूर्ण सम्बन्ध क्रमशः पूर्वाह्न, मध्याह्न तथा अपराह्न से है। साम तथा गान्धर्व दोनों का स्वतंत्र अस्तित्व मार्कण्डेय पुराण में मिलता है। इस पुराण में ग्राम रागों के अतिरिक्त जाति गायन का भी संकेत है। इसमें सात स्वर, सात वर्ण, सात गीति, सात मर्च्छना, 49 तान, तीन ग्रास धार प्रकार के पद, तीन प्रकार के लय तथा तीन प्रकार की यति और वाद्यों का वर्णन है। गीत के संगति में वीणा, वेणु, मृदंग तथा प्रणव वाद्य का वादन किये जाने का उल्लेख मिलता है।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण:

इस पुराण का काल मतंग मुनि के काल के आस-पास का है। इसमें सप्त गीतियों के अतिरिक्त चार अन्य प्राचीन गीतियों का उल्लेख मिलता है। विष्णु पुराण का अट्ठारहवाँ अध्याय महत्वपूर्ण है। जो "गीतलक्षण" के नाम से प्राप्त है।[2] इस पुराण

1- भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ- 226

2- प्राचीन भारत में इतिहास,पृष्ठ-289

के वाद्याध्याय में केवल दो वर्णों का उल्लेख है, वाद्यों के परम्परागत चारों प्रकारों का स्पष्ट वर्णन है। इसमें श्रुतियन्तरों सप्त स्वरों के विषय में तथ्य प्रकाश में आया है। मूर्च्छना के सम्बन्ध में विष्णु पुराण में वायु पुराण से भिन्न उल्लेख है। इस पुराण में 'अवधान' नाम से महत्वपूर्ण उल्लेख आया है। इसके उन्नीसवें अध्याय में कहा गया है कि 'तालगति' प्रदान करता है।[1] लय के तीन प्रकारों का भी वर्णन है। इस पुराण में सामवेद की चार शाखाओं का भी उल्लेख मिलता है।

आदि पुराणः

इसमें संगीत को गान्धर्व विद्या की संज्ञा दी गयी है तथा गायन के गुण-दोषों का भी वर्णन है।[2] इसमें संगीत गोष्ठियों का भी उल्लेख है। अनेक वाद्यों के साथ वीणा तंत्री गत वाद्यों में - ब्रह्म वीणा, त्रिपंची, वल्लकी, घोषकी आदि वीणाओं का उल्लेख है। इस पुराण के पन्द्रहवें अध्याय में देवांगना माता मरु देवी की पूजा के समय गीत,वाद्य तथा नृत्य का वर्णन है। जिससे संगीत का महत्व प्राप्त है।

पद्म पुराणः

इस पुराण के भूमि खिण्ड में कहा गया है कि गान सुनकर कुलदेवता प्रसनन होते हैं। भगवान संगीत से प्रसन्न होते हैं। गीत, वाद्य, नृत्य, ताल , लय आदि का उल्लेख प्राप्त है। गान्धर्व, अप्सराओं किन्नरों तथा गीत, वाद्य , मूर्च्छना तथा स्वरों का वर्णन प्राप्त है। ऋषियों मुनियों की स्तुति के रूप में गान किये जाने का वर्णन है। उत्सवों में मंगल गीत गाये जाते थे। गीतों के साथ तूर्य , वीणा, दुन्दुभि आदि वाद्यों के

1- प्राचीन भारत में इतिहास, पृष्ठ- 29।

2- संगीत शती- जया जैन, पृष्ठ- 7।

भेद, ताली बजाने का वर्णन, अलंकार, मूर्च्छना, ताल के भेद आदि का वर्णन है।[1] देवों के स्त्रियों के नृत्य करने तथानट नटनियों का वर्णन है।

उपरोक्त वर्णनों से यह स्पष्ट है कि पद्म पुराण काल में भी संगीत उच्च अवस्था में था।

स्कन्द पुराणः

स्कन्द पुराण के काशी खण्ड में सात स्वरों, 6 रागों और प्रत्येक की पाँच-पाँच स्त्रियों का और 101 तालों का वर्णन है। नगर खण्ड में राग-रागिनियों का सविस्तार वर्णन है। स्कन्द पुराण सेतुबन्ध खण्ड में कुछ स्थानों पर संगीत विषयक उल्लेख हुआ है जो निम्नवत है:-

(अ) 'घोषवती नाम वीणा' एक अति उत्तक वीणा थी।

(ब) युक्त वेणु, वीणा , मृदंग आदि बजाते नारद मुनि।

इसमें गायन तथा वादन के साथ साथ अप्सराओं के नृत्य का वर्णन है। इस युग में संगीतपूर्ण रूप से विकसित अवस्था में था।[2]

बृहधर्मपुराणः

इस पुराण में संगीत सम्बन्धी नाद, श्रुति तथा स्वर की व्याख्या की गयी है। इस पुराण में आरोह, अवरोह और संचारी वर्ण ही स्वीकार किये गये हैं। इसमें रागों के नाम, नाद, बाईस श्रुतियाँ, सात स्वर, तीन गतियाँ और छ: रागों के परिवार का विस्तृत वर्णन है। गाने के लिए सुकण्ठ तथा विधि नियमों का ज्ञान आवश्यक है।

1- पद्मपुराण भाषा भूमि खण्ड द्वितीय- पृष्ठ 64-66

2- प्राचीन भारतीय मनोरंजन मन्मथ राय, पृष्ठ-298

हरिवंश पुराणः

इस पुराण का संकलन ईसा की दूसरी शताब्दी तक हो चुका था। इसके पूर्व संगीत का प्रयोगात्मक पक्ष अधिक विकसित हो चुका था। महाभारत के परिशिष्ट ग्रन्थ के रूप में 'हरिवंश पुराण' का अपना विशेष स्थान है। इसके उन्नीसवें सर्ग में संगीत विद्या का अधिक चित्रण प्राप्त होता है। वैदिक तथा लौकिक संगीत की दोनों ही धारा समानान्तर रूप से विकसित थी। हरिवंश पुराण में संगीत शास्त्र के सभी प्रमुख तत्व उपलबध हैं। इसमें गायन, वादन , नृत्य तथा गान्धर्वो का विशेष विवरण मिलता है। वाद्यों के लिए 'तूर्य' संज्ञा थी इसमें तुम्बी, वीणा, मृदंग, बांसरी, मंजीरा जैसे सुषिर, अवनद्ध तथा घन वाद्यों का वर्णन प्राप्त है। इसके बीसवें सर्ग में घोषा, महाघोषा तथा सघोषा नामक ताम वीणाओं का उल्लेख मिलता है।

हरिवंश पुराण में ग्राम तथा उत्पन्न रागों की चर्चा है। इसमें हेमा, रम्भा, उवेशी, मेनका तिलोत्तमा आदि नर्तकियों के नाम से उस काल में नृत्य तथा गायन के चरमोत्कर्ष उन्नति का पता चलता है। हरिवंश पुराण के पूर्व संगीत की प्रयोगात्मक तथा शास्त्रीय पक्ष विकसित हो चुका था।

पाणिनी कृत 'अष्टाध्यायी':

ईसा से 500 वर्ष पूर्व महर्षि व्याकरणाचार्य पाणिनी का नाम प्राप्त होता है। जिन्होंने मूल आर्य भाषा को व्यवस्थित करके संस्कृत भाषा का रूप दिया और 'अष्टाध्यायी' नामक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ में संगीत के विषय में भी लिखा है पाणिनी ने अपने ग्रन्थ में गायन, वादन तथा नृत्य तीनों कलाओं का वर्णन किया है जिसे वे 'शिल्प' की संज्ञा दी है।[1]

1- पाणिनी कालीन भारत- वासुदेव शरण अग्रवाल- 169

इनके अनुसार 'साम' दृष्टि साहित्य है। इसमें गीत के लिए 'गीति' शब्द का प्रयोग हुआ है। अष्टाध्यायी में स्वरों के उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित को उच्च, नीच तथा समाहार नाम से वर्णित किया है। तन्त्री वाद्यों में वीणा का नाम मिलता है। अवनद्ध वाद्यों के अन्तर्गत माण्ड़क , ढक्का तथा दुर्दर वाद्यों का उल्लेख है। धम वाद्यों में झर्झर वाद्य का तथा झर्झर वादकों को झर्झरि कहा गया है। पाणिनी में परिवादक वह होता था जो वीणा वादकों का संगीत करता था। हाथ से ताल देने वाले वर्ग को 'पाणिध' या 'ताण्घ' कहा जाता था।[1] मृदंग तथा पणव की जुगुलबन्दी को "मादाडिक-पार्णाक्रम" कहते थे।

पाणिनी ने जहॉ एक तरफ अपने ग्रन्थ में महाभारत जैसे महाकाव्यों का वर्णन किया है तो दूसरी तरफ संगीत विषयक वर्णन भी किये हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से संगीत विषयक वर्णन महत्वपूर्ण माने जायेंगे।

जैने काल:

इस काल में ब्राह्मणों के महत्व को कम करने तथा वर्णाश्रमों, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के बन्धन को तोड़ने का प्रयास किया गया। फलस्वरूप भारतीय संगीत पर ब्राह्मणों का एकछत्र आधिपत्य समाप्त होकर सर्व साधारण के हाथों में पहुॅच गया। सभी वर्णो के लोगों में संगीत के प्रति चेतना की जागृति हुई संगीत की नींव पुनः महावीर स्वामी के सिद्धान्तों, सत्यता,पावनता, सुन्दरता, अहिंसा और अस्तेय पर रखी गयी। इस प्रकार संगीत के आध्यात्मिक प्रकाश को जागृत किया गया।

कुशल गायक एवं गायिकाओं को राजदरबार में सम्मान प्राप्त था। होली आदि त्योहारों पर निम्न जाति के लोग नगर के मार्गो पर समूह गायन और नृत्य करते थे।

1- भारतीय इतिहास में संगीत -13, पृष्ठ-169-170

जैन युग में संगीत ने अपने पुराने जातीय बन्धनों को तोड़ दिया था। तथा सभी लोगों के लिए साधना तथा मनोरंजन का विषय बन गया था। पिछड़े वर्ग के शूद्रादि जो अब तक संगीत से वंचित थे उन्हें भी संगीत से पूर्णतया लाभ मिलने लगा। इस युग में अनेकों लोकगीतों का भिन्न-भिन्न सामाजिक स्तर पर अभ्युदय हुआ। नृत्यांगना गीतों पर सामूहिक नृत्य करती थीं। समाज में उनकी प्रतिष्ठा उच्च स्तर की होती था। इस युग में वीणा का भिन्न-भिन्न स्वरूप धार्मिक कार्यो में प्रगति पर था जैसे- परिवादिनी वीणा, विपंची वीणा बल्लकी वीणा, महती वीणा, नकुली वीणा तथा कच्छपी वीणा आदि।

बौद्धकाल:

ईर्स. से 563 वर्ष. पूर्व भगवान बुद्ध का जन्म हुआ। उस काल के संगीत में जीवन की व्यापकता का समावेश हो चुका था। भगवान बुद्ध के सिद्धान्तों को गीतों द्वारा सुन्दर ढंग से गायन द्वारा नगर नगर गॉव-गॉव की सुप्त जनता को भव्य पथ पर लाया गया। इस काल में वीणा पर गायन होता था शास्त्रीय संगीत पूर्ण विकास की ओर उन्मुख था। वासना सम्बंधी संगीत की धुन्ध छवि का अन्त हो गया था तथा उपदेश ज्ञान सम्बन्धी पदों का सृजन हुआ साथ ही साथ संगीत के कुछ सुन्दर ग्रन्थ भी लिखे गये।

पितृपुत्र समागम कथा में उल्लेख है कि बुद्ध के जन्मोत्सव पर पॉच सौ बाद्यों का वृन्दवादन हुआ था। संगीतज्ञों के रूप में नर्तकियों और गणिकाओं को सम्मान दिया जाता था। बौद्ध बिहारों में आराधना के लिए नियुक्त कलाकारों को शासन द्वारा द्रव्य दिया जाता था। नालन्दा, विक्रमशिला तथा तदन्तपुरी जैसे विश्वविद्यालयों में संगीत संकाय होता था। जिसमें उस काल के विख्यात संगीतज्ञों गायक वादक तथा नर्तक के विशेषज्ञों की नियुक्ति होती थी। बालक बालिकाओं को संगीत शिक्षा दी जाती थी। बौद्ध साहित्य में पाली त्रिपिटकों का महत्वपूर्ण. स्थान है। जिस प्रकार वेद एवं उपनिषद ब्राह्मण धर्म के पवित्र ग्रन्थ माने जाते हैं उसी प्रकार बौद्ध धर्म में पाली त्रिपिटक ग्रन्थ माने जाते

हैं।

सन्दर्भ, पुण्डरीक महायान बौद्धों का अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

पाली त्रिपिटकों में संगीत:

संगीत के लिए 'गान्धर्व' एवं शिल्प संज्ञा प्राप्त होती है। संगीत के लिए गायन वादन तथा नृत्य का एक साथ उल्लेख मिलता है। पाली त्रिपिटकों में बौद्ध हीनयान धारा में भिक्षुओं के लिए संगीत को निषिद्ध माना जाता था। स्वयं भगवान बुद्ध भी संगीत का उपयोग नहीं करते थे। पाली त्रिपिटकों में गाथा ' गायन का भी उल्लेख प्राप्त होता है। गाथा गायन के साथ वीणा वादन का भी उल्लेख है। गाथा बुद्ध धर्म के ज्ञाता ब्राह्मण के विषय में गाई जाती थी। गाथा एक प्रकार का प्रशस्ति गायन माना जा सकता है। किन्नरियों के भी गायन का उल्लेख बौद्ध साहित्य में प्राप्त होता है।

गायन के साथ वादन तथा ततवाद्यों का भी तंत्रीवाद्य (वीणा) के रूप में वर्णित है। अवनद्ध वाद्य में मृदंग पणव,भेरी डिंडिम, दुन्दुभि, आडम्बर कुमतणिक तथा मरुपटह का उल्लेख है। उक्त सभी वाद्यों का वादन भिन्न-भिन्न अवसरों में होता था। यात्रा, सेना प्रयाण, घोषणा आदि के अतिरिक्त अन्त:पुर सदा इनसे प्रतिध्वनित होता था एवं नृत्य गायन के साथ संगत रूप में होता था। जुलूस में ढ़ोल शदकों का अग्रगण्य स्थान होता था तुषिर वाद्य के अन्तर्गत शंख, वेणु, तूरण, सुघोतक नृकल का उल्लेख है। सुघोतक, तुरही के रूप में था। इस काल में दो मुख वाले वेणु भी प्रचलित था,जिन्हें सांची में अंकित किया गया है त्रिपिटक साहित्य में घन वाद्य का भी उल्लेख है जिसके अन्तर्गत करताल का उल्लेख प्राप्त है। लय एवं ताल जो घन वाद्यों का प्रयोजन है।

तूर्य के लिए बहुधा तुरिम संज्ञा का प्रयोग किया जाता है। पंचांगिक तूर्य का उपयोग नृत्य, गीत के साथ अन्य सामाजिक एवं धार्मिक अवसरों पर होता था। मुरज वेणिका नामक वाद्य पंचागिक तूर्य का एक अंग हो सकता है।

बौद्ध काल में त्रिपिटिकों में नृत्य के अनेक उल्लेख मिलते हैं नृत्य की जो परम्परा प्राचीन काल में था वह बौद्धकाल में भी अक्षुण्ण थी। नृत्य के साथ गायन वादन होता था। समूह नृत्यों का भी प्रचार था। बुद्ध के महाप्रयाण के बाद मल्लों ने कई दिनों तक गायन, वादन नृत्यादि किया था। इसका अंकन सांची की कला में देखने को मिलता है। जीव-जन्तुओं के साथ भी नृत्य का सम्बन्ध देखा जा सकता है मोरों के नृत्य के मुद्राओं का वर्णन भी प्राप्त है जो बौद्धकाल का ही प्रभाव है। नृत्य में गायन, वादन के साथ अनुकूल भाव प्रदर्शन अंग उपांगों के द्वारा दिया जाता था। नृत्य ताल में युक्त होता था। भरत के नाट्यशास्त्र में उल्लिखित मुद्राओं से समीकरण भी किया जा सकता है। भरहूत के संगीत रूपक में चार अप्सराओं में से प्रथम ऊपर की पंक्ति वाली 'पटाक" मुद्रा में है, उसके दोनों ही हाथ उसी मुद्रा में हैं। वाद्य शास्त्र में 'पटाक' मुद्रा का उल्लेख किया गया है। इसके बाद वाली अप्सरा का बायाँ हाथ पटाक मुद्रा तथा दायाँ हाथ अरल या शुचिमुख मुद्रा में हैं। इनमें से तीसरी का बायाँ हाथ पटकाक मुद्रा में, दायाँ हाथ चतुर मुद्रा में हैं। इन मुद्राओं के विषय में विस्तृत विवरण भरत ने अपने ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में दिया है। नृत्य स्त्री पुरुष दोनों ही करते थे।

संगीत एवं राज्य तथा राजाः

संगीत राज्य का अभिन्न अंग बन गया था। राजा का पालन पोषण संगीतमय वातावरण में होता था। राजा का शयन , जागरण संगीत के साथ होता था। राजा के दरबार मेतें कुशल संगीतज्ञों की नियुक्ति होती थी जो राजाओं के प्रशस्ति गायन भी करते थे। 'सोम' नामक नगरी संगीतमय वातावरण के अत्यधिक प्रसिद्ध था। बुद्ध घोष इसे सोमनगर मानते हैं जो सुन्दर दृश्यों से युक्त था।

हस्तिनापुर, निरति,कपिलवस्तु, शाक्यों की नगरी इन्द्रप्रस्थ नगरी इत्यादि सर्वदा गायक, वादक तथा नर्तकों से परिपूर्ण रहती थी भिन्न-भिन्न प्रकार के बाद्यों की ध्वनि,

सर्वदा मनोहारी सुनाई देती थी राजा राजकुमारों की खुशी के लिए संगीत की व्यवस्था करते थे। तीन ऋतुओं के लिए तीन महल होता था जिसमें स्त्री संगीतकारों, गायिकाओं, वादिकाओं को रखा जाता था। राज्य में वीणा वादन एक आनन्द का वातावरण होता था।

राज्य के अनेक घोषणात्मक कार्य्र बाद्य वादन के द्वारा होता था । जनता को सूचना के लिए नगाड़ा, ढोल वाद्यों का उपयोग होता था। इसी प्रकार किसी को दण्ड देते समय कर्कश एवं भयावह वाद्यों की ध्वनियों का नगर में प्रयोग होता था।

राजाओं का अन्तःपुर सर्वदा संगीत तथा संगीतकारों से परिपूर्ण होता था जो प्रतिदिन मधुर गायन वादन से राजाओं प्रातः एवं रात्रि जागरण एवं निद्रा के लिए मनोरंजन करता था। भिन्न अवसरों उत्सवों की शोभा गायन वादन एवं नृत्य ही था। राजा अपने राज्य में अन्य राज्यों , नगरों से अच्छे प्रतिष्ठित कलाकारों को आमन्त्रित करता था तथा उन्हें उचित आदर तथा सम्मान द्वारा पुरस्कृत करता था।

राजा स्वयं संगीत का ज्ञाता होता था। उनकी सेनाओं में भी वाद्य वादकों को रखा जाता था। राजाओं तथा सम्मानित व्यक्तियों का स्वागत संगीत द्वारा होता था।

इस प्रकार यद्यपि संगीत भिक्षुओं के लिए निषिद्ध था तथापि गृहस्थ , उपासकों, राजाओं के जीवन का आवश्यक एवं अभिन्न अंग माना जाता था। संगीत सम्बंधी उत्सव भी होते थे जिसमें एक दूसरे नगर के प्रतिष्ठित संगीतज्ञ भाग लेते थे।

संगीत शिक्षा एवं आचार्यः

संगीत के आचार्य संगीत की शिक्षा देते थे आचार्यो को राज्ञाश्रय भी प्राप्त होता था। कुमार दीर्घायु महावत से कहता है कि 'आचार्य में तुमसे सभी प्रकार के शिल्प की शिक्षा लेगा' तथा इस प्रकार उसने गायन एवं वीणावादन की शिक्षा प्राप्त की थी।

आचार्यो की कृपा एवं शिक्षण से समाज में अच्छे अच्छे गायक , वादक, नर्तकों का विकास हुआ। समाज में योग्य कलाकारों के लिए प्रतियोगिताएं भी होती थीं किन्नरों का परिवार ही संगीतज्ञ होता था। अतः उनका संगीत से सम्बन्ध स्पष्ट ही है।

इस प्रकार पाली त्रिपिटक साहित्य संगीत के विपुल एवं विस्तृत प्रचार का अवलोकन कराते हैं। संगीत का धार्मिक एवं लौकिक दोनों ही उपयोग समाज में फैल चुका था। संगीत जीवन में इतना घुल गया था कि आनन्द नामक बौद्ध भिक्षु को प्रकृति की वस्तुओं में भी संगीत की ध्वनि सुनाई देती थी। जब ताड़ के पत्ते हवा में हिलकर प्रतिध्वनित होते थे तो उसमें पंचागिक तूर्य की ध्वनियों की अनुभूति होती थी, मानों कुशल वादक सम्यक रूप से पंचांगिक तूर्य बजा रहे हों।

निष्कर्ष स्वरूप यही कहना पर्याप्त होगा कि संगीत सम्बंधी ग्रन्थ न होने पर भी त्रिपिटकों में संगीत का विपुल उल्लेख मिलता है। जो संगीत के प्रचार एवं प्रसार का द्योतक है। इस प्रकार भारतीय शास्त्रीय संगीत का अभ्युदय हुआ जो कालान्तर में विकसित होता गया तथा इसका व्यावहारिक तथा शास्त्रीय पक्ष विकसित हुआ। संगीत का दिन प्रतिदिन विकास होता गया। संगीत का विभिन्न वर्गो एवं समाज पर प्रभाव पड़ा। प्राचीन काल में संगीत का अच्छा प्रभाव था। मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु एक संगीत का प्रयोग होता था। स्त्री पुरुष दोनों ही गायन वादन एवं नर्तन करते थे। कालान्तर राजाओं के राजदरबार में नर्तकियों का प्रवेश हुआ बहुधा ब्राह्मण ही संगीतज्ञ होता था। देवालयों, यज्ञ, पूजा पाठ तथा राज दरबारों में संगीत का प्रयोग होता था। संगीत जीविका साधन भी माना जाने लगा। भरत के नाट्य शास्त्र, मतंग का वृहद देशी तथा संगीत रत्नाकर में भारतीय संगीत के अभ्युदय एवं विकास सम्बंधी व्यवहारिक एवं शास्त्रीय भरपूर उल्लेख किया गया है।

निष्कर्ष यह है कि बौद्ध ग्रन्थों के रचनाकाल में संगीत के वैदिक तथा लौकिक दोनों पक्षों का प्रचलन था। सामवेद की शिक्षा वैदिक अध्ययन के अन्तर्गत मानी जाती थी बालक बालिकाओं को संगीत शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था। कला मर्मज्ञता सुसंस्कृत व्यक्ति का आवश्यक गुण माना जाता था। कला नैपुण्य के कारण गणिकाओं को समादर की दृष्टि से देखा जाता था। संगीत का उपयोग परमार्थिक तथा श्रृंगारिक दोनों कार्यों के लिए किया जाता था। बौद्धों को वही संगीत मान्य था जो आध्यात्मिक साधना के लिए बाधक न हो। संगीत का सामूहिक अनुष्ठान गिरग्रा, समज्ज तथा नक्तक कीलम् जैसे लोकोत्सवों पर किया जाता था। ऐसे प्रसंगों में संगीत के अतिरिक्त नाट्य, व्याख्यान गायन आदि का क्रम चलता था। नट, नटी को समाज में हीन दृष्टि से देखा जाता था। कलानिपुण व्यक्तियों को राजसभा में उचित वेतन देकर नियुक्त किया जाता था। कलाकारों की समय समय पर संगीत प्रतियोगिताएं होती थीं जिनका निर्णय राजा द्वारा मान्य संगीत विद्वानों द्वारा किया जाता था।

इस काल में सप्ततंत्री वीणा प्रमुख तथा लोकप्रिय वाद्य था। सप्ततंत्री के अतिरिक्त परिवादिनी, त्रिपंथी, वल्लरी, महती, नकुली, कच्छपी तथा तम्बवीणा का प्रचार था। वीणा के साथ मृदंग बनाने का प्रचलन था मृदंग के साथ पणव, मेटी, डिण्डिम तथा दुन्दुभि का प्रचलन था। घन वाद्यों में घण्टा, झल्लड़ी तथा कांस्यताल का प्रचार था। सुषिर वाद्यों में तूर्य, शंख , कुराल तथा श्रृंग का प्रचलन था। संगीत के अन्तर्गत स्वर, ग्राम, मूर्छना के साथ रागों का प्रचलन आरम्भ हो चुका था।

जैन ग्रन्थों में संगीतः

जैन सूत्र भी संगीत के दोनों तथ्वों का उल्लेख प्रदान करते हैं। ताल अथवा लय जो संगीत का आवश्यक अंग है, इस पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है, ताल देने वालों के वर्ग का यहाँ भी उद्धरण देखा जा सकता है संगीत को 72 कलाओं में स्थान

दिया गया था तथा महिलाओं के 64 गुणों में भी इसका एक स्थान था। यहाँ कला के लिए शिल्प संज्ञा प्राप्त होती है।

इस काल में संगीत पर ब्राह्मणों का एक मात्र जो अधिकार था वह सर्व साधारण के हाथों में पहुँच गया फलस्वरूप पिछड़े वर्ग के लोगों में भी संगीत की कलात्मक चेतना का आविर्भाव हुआ। संगीत की नींव पुनः महावीर स्वामी के सिद्धान्तों , सत्यता, पावनता, सुन्दरता, अहिंसा तथा अस्तेय पर रखी गयी।

संगीत के कुशल कलाकारों को राज सभा तथा जनता में सम्मान प्राप्त था। त्योहार आदि उत्सवों में नगर के भिन्न स्थानों पर समूह गायन तथा नृत्यादि के कार्यक्रम होते थे। संगीत विलास तथा मनोरंजन का अंग बन गया था।

जैन युग में संगीत ने अपने पुराने जातीय बन्धनों को तोड़ दिया था। वह सबके लिए साधना का मुख्य विषय बन गया था। पिछड़े वर्ग के लोगों ने तथा शूद्रों ने जो अब तक संगीत के ज्ञान से वंचित रखे जाते थे पूर्णरूप से लाभ उठाना प्रारम्भ कर दिया था। इस युग में अनेक गायन शैलियों ने जन्म लिया।

गायनः

गायन (कण्ठ संगीत) का नृत्य एवं वाद्य के साथ उल्लेख मिलता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि गायन करने वालों का पृथक् वर्ग था। संगीत के आयोजकों में गायक वादकों एवं नर्तकों को जनता तथा राजाओं के द्वारा सम्मानित किया जाता था। कुछ राजा जन अच्छे संगीतकार थे। राजा उदयन की कथा आवश्यक चूर्मिका में वर्णित है। राजा उदयन एक प्रसिद्ध गायक एवं वीणावादक थे जो अपनी पत्नी के नृत्य के साथ गायन एवं वीणा संगीत करते थे। राज्य सभा में कुशल गायकों की नियुक्ति होती थी चम्पा नगरी की गणिका संगीत तथा वैशिकी कला में पारंगत बताई गयी है और उसे राजकोष से पर्याप्त वेतन दिया जाता था। गायन प्रस्तुत

करने गणिकाओं के अतिरिक्त नृत्य का व्यवसाय करने वाला निद्धधाव अर्थात नर्तकियों का विशिष्ट वर्ग था।

विभिन्न उत्सवों के अवसर पर नागरिक और ग्रामीण जनता के गीत नृत्यादि कार्यक्रमों का प्रचुर आयोजन किया जाता था। जनता के मनोरंजन करने वाले व्यवसायिक वर्गो में गन्धर्व नट, नर्तक, रास गायक, तूणवादक तथा तुम्बवीणा वादक थे। गायक नर्तक तथा नट स्थान-स्थान पर जाकर ग्रामीण जनता का मनोरंजन करता था। संगीत विलास सामग्री का अभिन्न अंग रहा है। श्रेष्ठ नागरिकों का समय संगीत के राग रंग में व्यतीत होता था। जैन आगमों का जनजन में प्रचार करने के लिए चलित नामक गीतों का उपयोग किया जाता था।

वादनः

जैन ग्रन्थों में कुछ नवीन वाद्यों का उल्लेख मिलता है जो समकालीन अन्य ग्रन्थों में नहीं हैं। वाद्यों के लिए चार प्रकार की संज्ञायें मिलती हैं तत, वितत, घन, सुषिर एविं अवनद्ध बाद्य।

(अ) तंत वाद्यः तंत्रीवाद्यों के अन्तर्गत वीणा का महत्वपूर्ण स्थान था। वीणा विपंची व द्वीसक,तुणक, पानक, तुम्बवीणा, घंकुन, वल्लरी, भामरी, कच्छपी इत्यादि। जिस प्रकार विपची वीणा की व्याख्या वाद्यशास्त्र में 9 तारों वाली वीणा के रूप में की गयी है उसी प्रकार अन्य वीणाओं के विषय में भी अनुमान किया जा सकता है। तृणक पाणक घंकुन आदि अप्रचलित संज्ञायें हैं। प्रमाणस्वरूप के कारण इनका निश्चित रूप निर्धारित नहीं किया जा सकता।

वितत तथा अवनद्ध वाद्यः

इनमें मृदंग, नन्दि,मृदंग, दुन्दुभि,झर्णरी, पटह,भेरी, पणव, मुरज हुडुक, भंभा आदि हैं। हुडुक आज भी प्रचलित है। जैन परम्परा के अनुसार आदिम नृत्य नाद्य में भी महावीर की जीवनी पर आधारित गाथाओं के साथ वाद्यों के बजाने का प्रचलन था।

वाद्य वृन्द तथा नृत्य को कलात्मक आकृतियों के माध्यम से दिखाया जाता था। नृत्य नाट्य के अन्तर्गत द्रुत, विलम्बित, लयों का भी उल्लेख है।

घन एवं सुषिरः

जैन ग्रन्थों में तत्कालीन वाद्यों का भी उल्लेख है जैसे- शंख, सिंग, संखिया, खरमुही, ढक्का, महाढक्का , भेरी, दुन्दुभि, मुरज , मृदंग, मद्दल, वीणा, सुघोपा, हुडुक, डिण्डिम आदि।

नृत्यः

नृत्य का गायन वादन के साथ उल्लेख किया जा चुका है। त्योहारों, उत्सवों एवं लोकगीतों के साथ नृत्य का प्रयोग होता था। परन्तु कुछ ऐसे नृत्य भी थे जो अन्य प्रकार के नृत्यों से भिन्न थे। कल्प सूत्र में कुछ प्रचलित नृत्य प्रकारों को देखा जा सकता है। प्रथम प्रकार का वह नृत्य है जिसमें नर्तक किसी वाद्य की सहायता से नृत्य करता है, दूसरे प्रकार में रस्सी पर चढ़कर नृत्य करता है यह नर्तक 'जल्ल' कहा गया है। तीसरे प्रकार में डण्डे की सहायता अथवा बाँस पर चढ़कर नृत्य करने वाला जिसे 'लख' कहा गया है। इसकी 'वंशनर्त्तिन' से तुलना की जा सकती है। उपर्युक्त नृत्य लोक नृत्यों के तथा जीविकोपार्जन के लिए किये जाने वाले नृत्य के प्रकाश में भलीभाँति समझा जा सकता है। इस प्रकार के नृत्य आज भी नटों में प्रचलित हैं। उड़ीसा में लम्बे लम्बे बांसों पर छोटे छोटे बच्चे नृत्य करते देखे जा सकते हैं।

संगीत का प्रचारः

संगीत का समाज में अत्यधिक प्रचार था। मनोरंजन का प्रधान अंग था। जैन भिक्षुओं के लिए संगीत निषिद्ध था, परन्तु महावीर की स्तुति गीत वाद्य के साथ की जाती थी। तीर्थंकर के जन्म दिवस पर राज्य में संगीत का आयोजन होता था जो कल्पसूत्र में आया है। नगर संगीतज्ञों द्वारा सुशोभित होता था। राजा के पुत्र-जन्म के अवसर पर

दस दिनों तक संगीत होता था।

निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि संगीत कला का दिनो-दिन विकास हो रहा था। संगीत ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य निम्न वर्गो में भी प्रभावशाली हो गया था।

भरत का नाट्यशंस्त्र:

भारतीय शास्त्रीय संगीत का उद्भव एवं विकास ईसा से पूर्व वैदिक काल में हुआ था और उसके पूर्व यह निश्चित करना कि कब से हुआ अत्यन्त दुर्लभ है। वैदिक काल में कुछ प्रमाण प्राप्त होते हैं। बौद्वकाल तथा जैन ग्रन्थों में संगीत का उल्लेख है।

भरत-नाट्यशास्त्र प्राचीन काल का ऐसा ग्रन्थ है जिसमें गायन वादन नर्तन का व्यवहारिक तथा शास्त्रीय वर्णन मिलता है जो प्रामाणिकता से परिपूर्ण है। नाट्य शास्त्र संगीत पर पृथक ग्रन्थ नहीं है फिर भी संगीत सम्बन्धी सामग्री प्रदान करता है इस ग्रन्थ में संगीत के छः अध्यायों में भारतीय शास्त्रीय संगीत का विशुद्ध रूप प्राप्त है।

शास्त्रीय विषयों की व्यापकता को देखते हुए इन छः अध्यायों को संगीत के शास्त्रीय एवं व्यवहारिक सभी पक्षों को पूर्णतया दर्शाया गया है।

नाट्य शास्त्र की उपलब्धियाँ:

भारतीय संगीत शास्त्र के अध्ययन के लिए जो कुछ सामग्री आज उपलब्ध है उसके प्रणेताओं में भरत मुनि को आदिम स्थान देना चाहिए क्योंकि इसके पूर्व संगीत शास्त्र सम्बंधी कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं है। भरत के पूर्व आचार्यो में नारद एवं स्वाति का नाम उल्लेखनीय एवं अग्रगण्य है। जिनका अनुसरण भरत ने स्वयं किया है, परन्तु स्वतिका तो ग्रन्थ ही नहीं मिलता और जिस नारद को गन्धर्व वेद का प्रवर्तक कहा गया है

उसका विषय प्रतिपादन तो आंशिक रूप से भी आज प्राप्त नहीं है। नारदीय शिक्षा के रूप में जो अन्य किसी नारद की प्रति प्राप्त भी है तो उसमें संगीत का शास्त्रीय विवेचन बहुत ही कम है, दूसरी बात यह है कि विद्वानों ने नारदीय शिक्षा को 10वीं शताब्दी का ग्रन्थ माना है, भरत ने संगीत पर कोई पृथक ग्रन्थ नहीं लिखा है, परन्तु नाट्यशास्त्र के अन्तिम छः अध्यायों में संगीत सम्बन्धी बहुत ही महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त है, संगीत सम्बन्धी तत्वों के मध्य भरत यह स्मरण कराना नहीं भूलते कि संगीत नाट्य का प्रमुख अंग है, भरतनेनाट्यसम्बंधी व्याख्यामेंसंगीत के मूल तत्वों पर प्रकाश डाला है,जो सुगठित , सरल एवं श्रृंखलाबद्ध हैं जिस प्रकार नाट्य का पाण्यांग ऋग्वेद से है उसी प्रकार गीतांग सामवेद से लिया गया है। स्पष्ट ही गान्धर्व नाट्य का अभिन्न अंग सिद्ध हो जाता है, नाट्य में गान्धर्व का उतना ही अंग अभिष्ट था जो उसकी रससिद्धि में और आवश्क हो, भरत ने गीत का प्रयोग प्रायः स्वर योजना के अर्थ में किया है, जिसके अर्न्तगत वाद्यों का वर्णन भी मिलता है, चूँकि स्वर कंठ एवं वाद्य दोनों से उत्पन्न होता है, इसलिए वाद्यों को भी गीत के व्यापक अर्थ के अन्तर्गत कर लिया है, नाट्यशास्त्र के 19वीं अध्याय में 'काकुस्वर व्यंजन' के नाम से मिलता है, काकु का संगीत कें विशिष्ट स्थान है जिस प्रकार नाट्य अथवा साधारण बोलचाल में काकुभेद होनो आवश्यक एवं महत्वपूर्ण होता है उसी प्रकार गीतादि में भी काकु भेद बहुत ही महत्वपूर्ण है, स्वरों का किस प्रकार उच्चारण करने से कैसी अनुभूति कैसा रस एवं भाव उत्पन्न होगा इस विषय में विस्तृत सूचना इसी अध्याय में प्राप्त है, भरत का संगीत सम्बन्धी उल्लेख काकु, स्वर, तत्, सुषिर, वाद्याध्याय 28 से 30 तथा तालाध्याय, ध्रुवा तथा अवनद्ध बाद्य अध्याय 31, 32, 33 में प्राप्त है, नृत्य, नाट्य का प्रमुख अंग है, जिसका अत्यन्त विस्तृत विवरण भरत अपने नाट्य शास्त्र में करते हैं।

काकु स्वर व्यंजनः

पाठ्य में कण्ठ स्वर के उतार-चढ़ाव अथवा काकुभेद, लयभेद, आदि तत्व संगीत के अभिन्न तत्व हैं अतः भरत काव्य नाट्य शास्त्र का अध्याय 19 प्रत्यक्ष रूप से संगीत सम्बन्धी न होने पर भी नाट्य में नाट्य ही में क्यों? दैनिक जीवन में ओतप्रोत संगीत तत्वों के निरूपण के कारण संगीत की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

इस अध्याय में पाठ्य के गुणों का उल्लेख किया गया है इसके अन्तर्गत निम्न तत्व आते हैं।

सप्त स्वरः

सप्त स्वरों का विभिन्न रसों के साथ सम्बन्ध जाति प्रकरण में भी तथा इस अध्यय में भी दिखाया गया है, सप्त स्वरों की स्थिति निश्चित स्वरांतरालों पर होती है, बातचीत एवं पाठ्य में इस प्रकार के निश्चित अन्तरालों का प्रयोग सम्भव नहीं, भरत ने इसे सम्भवतः नाट्य के अन्तर्गत सस्वर,काव्यपाठ या पद्यपाठ के लिए स्वरोपयोगिता के कारण ले लिया है।

त्रिस्थानः

त्रिस्थान से तात्पर्य आवाज के उरः कण्ठ एवं शिरः से निकलने से है, मनुष्य शरीर एवं वीणा दोनों ही में सप्तस्वर एवं उनकी तारता उपर्युक्त तीन स्थानों से ही निकलती है यदि किसी दूर खड़े व्यक्ति को पुकारना हो तो शिरः स्थानीय, कोई मध्य दूरी पर हो तो कण्ठ स्थानीय, एवं अत्यन्त समीप वाले को उरः स्थानीय स्वरों का प्रयोग करना चाहिए, पाठ्योच्चार के भी चार भेदप बताये गये हैं जिन कारणों के साथ सम्बन्ध जोड़ा गया है, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, वीर, रौद्र एवं अद्भुत, कम्पित तथा करुण, वीभत्स एवं भयानक में अनुदान स्वरित एवं कम्पित का प्रयोग किया जाना चाहिए।

द्विविध काकुभेदः

इसका साधारण एवं व्यापक दोनों अर्थो में प्रयोग किया गया है भरत ने साधारणतया बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले काकुआ को दो भार्गों साकांक्ष एवं निराकांक्ष में विभाजित किया है, साकांक्ष काकु के अन्तर्गत वे वाक्य आयेंगे जिनका अर्थ अपूर्ण हो, जिज्ञासा बनी ही रह जाय निराकांक्ष काकु उन वाक्यों में सम्बन्धित होता है, जिनका अर्थ स्पष्ट हो।

सत् अलंकारः

पाठ्य में स्वरों के 6 अलंकार होते हैं यथा- उच्च, दीप्त, मंद्र, नीच, द्रुत एवं विलम्बित होना चाहिए।

सत् अलंकारों के प्रयोगः

उच्च स्वर शिरः स्थान से उत्पन्न होता है तथा तार होता है, इसका प्रयोग किसी दूरस्थ व्यक्ति को बुलाने को लिए प्रत्युत्तर घबराहट किसी को डराने में तथा दुखादि में होता है दीप्त स्वर शिरस्थान से उत्पन्न होता है, तथा तारतर होता है, इसका प्रयोग आक्षेप, कलह, विवाद, अमर्ष , क्रोध, दर्प, तीक्ष्ण, रुद्र, कर्कश शब्द, शोकादि में किया जाता है। मंद्र स्वरउरः स्थान से उत्पन्न होता है, तथा इसका प्रयोग निर्वेद ग्लानि चिन्ता औत्सुक्य दैन्य व्याधि, क्षत एवं मूर्छा आदि में होता है, नीच स्वर उरः स्थान से उत्पन्न होता है, परन्तु यह मन्द्र तार या अत्यन्त नीचा होता है, इसका प्रयोग स्वाभाविक बातचीत, व्यथित, शान्त, प्रस्त, पतित , मूर्छादि में होता है द्रुत स्वर कण्ड स्थान से उत्पन्न होता है, एवं तीव्र होता है, विलम्बित स्विर कण्ड स्थानीय तथा कुछ कम मंन्द्र होता है इसका प्रयोग श्रृंगार , वितर्क, विचार अमर्ष, ईर्ष्या, क्रोध , घृणा, प्रमाद, लज्जा चिन्ता, विस्मय एवं रोषादि में होता है, अनेक भावों एवं रसों के उपर्युक्त काकुओं का प्रयोग हमेशा उच्च, दीप्त एवं द्रुत अलंकारों में होना चाहिए।

भिन्न-भिन्न रसों में काकु भेदः

विलम्बित काकु का प्रयोग हास्य श्रृंगार एवं करुण रस में वीर रौद्र अद्भुत में दीप्त काकु तथा द्रुत एवं विलम्बित काकु का प्रयोग भयानक वीभत्स में करना चाहिए, व्यापक अर्थ में काकु का क्षेत्र सार्वभौम बाल्मीकि रामायण में लवकुश का गायन सम्भवतः ऐसे ही भावों से पूर्ण था। भरत का संगीत सम्बन्धी उल्लेख उसके ग्रंथ के अट्ठाइसवें अध्याय से प्रारम्भ होता है, यह प्रकरण उनके द्वारा अद्योत विधी कहा गया है। उद्योत विधिसे तात्पर्य है बाद्य से होता है वाद्य चार प्रकार से बनाये गये हैं तत्, अवनद्ध , घन एवं सुषिर है।

कण्ठ संगीतः

यद्यपि कण्ठ संगीत मानवीय कलाओं में प्राचीनतम् है तथापि इसका विश्लेषणात्मक अध्ययन संगीत सम्बंधी वाद्यों के आविष्कार के पश्चात ही प्रारम्भ हुआ एवं उन्नत हुआ, नाट्यशास्त्र में भी ऐसा कहा गया है कि संगीत के स्वरों के दो आधार होते हैं- मनुष्य की कण्ठ रूपी वीणा एवं लकड़ी की वीणा एवं इसी लकड़ी की वीणा पर श्रुतियों की उत्पत्ति होती है, भारतीय संगीत शास्त्र की दृष्टि से 'क्षुति' संज्ञा बहुत महत्वपूर्ण है।

स्वरः

संगीत में सात स्वर होते हैं। इनकी संज्ञायें भरत इस प्रकार देते हैं- सड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम धैवत- एवं निषाद। सात स्वरों के पारस्परिक अन्तराल सम्बन्धी भेद के विषय में भरत कहते हैं कि ये चार प्रकार के होते हैं- वादी, संवादी, अनुवादी विवादी। इन भेदों की व्याख्या श्रुतियों के द्वारा की है। दूसरे शब्दों में श्रुतियों के योग से ही ये चार भेद निर्मित होते हैं।

श्रुतिः

संगीत के व्यवहार में नाद के तीन भेद माने गये हैं मन्द, मध्य, तार। इनका

स्थान क्रमशः ह्रदय, कण्ठ एवं मूर्धा में माना गया है, शरीर रूपी वीणा में ये क्रमशः नीचे से ऊपर जाते हैं। परन्तु काष्ठ वीणा में उल्टा क्रम रहता है। प्रत्येक स्थान में संगीतोपयोगी नाद के शास्त्रकारों ने सामान्यतः 22 भेद माने हैं ये 22 श्रुतियों के नाम से प्रसिद्ध है। यह तो सभी जानते हैं कि श्रुतियाँ संगीत का मूल आधार होती हैं। स्वरों की शुद्ध एवं विकृत अवस्थाओं अथवा स्थानों का तथा उनके परस्पर अन्तर का निदर्शन ये श्रुतियाँ करती हैं। श्रुतियाँ 22 होती हैं, भरत ने स्पष्ट कहा है कि द्विकारिस्रकचतुष्काष्तु श्रेया वंशगताः स्वराः। इति तावन्मया प्रोक्ताः सवंशश्रुतयो नव। नव श्रुतियों से तात्पर्य है कि स्वरान्तरात तीन प्रकार के होते हैं- चतु श्रुति त्रिश्रुति तथा द्विश्रुति। इन तीनों को जोड़ने से 4 + 3+ 2 = 9 **'नव'** संख्या बन जाती है।

'सवंशश्रुतयो' संज्ञा महत्वपूर्ण है, प्राचीर स्वरज्ञों ने वंश मुरली आदि सुषिर वाद्यों के छिद्रों से निकलने वाली ध्वनि को सुना एवं तीन प्रकार के अन्तर को देखा जो चतुश्रुतिक त्रिश्रुतिक एवं द्विश्रुतिक अन्तर के रूप में प्रसिद्ध है, सा, में प ये चार श्रुति के र - ध तीन श्रुति के एवं गनि दो श्रुति के स्वर हैं, इनको जोडने से 9 स्वरांतर ही बनेंगे। इस प्रकार = सप्तक में 4 श्रुयनतर वाले तीन तीन श्रुयनतर वाले एवं दो श्रुयन्तर वाले दो स्वर मिलाकर 22 श्रुतियाँ होती हैं। भरत के नाट्य-शास्त्र के 29वें मध्याय में पाँच श्रुति, जाति नामों का उल्लेख मिलता है **'सम'** नामक अलंकार को भरत ने समझाया है। संगीत की 22 श्रुतियों की सिद्धि अथवा उसका नाम जानने के लिए ग्रंथकारों ने चतुःसारण- प्रक्रिया का उपयोग किया है इस सारणी को समझाते समय सप्त स्वरों में श्रुतियों के विभाजन का विषय, लक्षण, सन्मुख आता है, किन्तु इससे पूर्व क्रमिकता के लिए स्वर की परिभाषा एवं श्रुति स्वर के सम्बन्ध का देखना आवश्यक है।

स्वरः

स्वर की परिभाषा या लक्ष्मण का उल्लेख भरत के ग्रन्थ में प्राप्त नहीं होता।

मतंग आदि परवर्ती ग्रंथकारों के इस विषय में कथन सार इस प्रकार है। "जो ध्वनि या नाद स्वयं रंजक हो तो ध्वनि राग की जनक हो, उपर्युक्त लक्षणों को ध्यान में रखते हुए स्वर की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है। 'यह वह अनुसरणात्मक नाद है जो किसी प्रकार के आघात से स्वयं अद्‌भुत होता है , जो अनुरंजकहो नियत श्रुति स्थान पर स्थित होने पर भी अपने से अधो- ऊर्ध्व गति पाने से विकृत होता हो एवं आत्मा की अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने में जो सहायक हो। सड्जग्रामिक मध्यम की मूर्च्छना-

म प ध नि सा रे ग म
4 3 2 4 3 2 4

मध्यम कोसा मानने से प्राप्त स्वरावली- स र ग म प ध निसां
4 3 2 4 3 2 4

यह स्वरावली आज के कोमल नी युक्त एवं शुद्ध निरहित समाज की स्वरावली है। आधुनिक शुद्ध स्वरावली बिलावल की तुलना में केवल 'नी' का भेद है।

आधुनिक (सा) को यदि मध्यम ग्राम का 'नि' मानकर मध्यम ग्राम का निषादादि मूर्च्छना बनाई जाये तो विलावल के स्वर उसी रूप में प्राप्त हो जाते हैं।

म ग्राम की नी की मूर्च्छना - नि सा रे ग मपधनि
4 3 2 4 342

नि को`सा मानकर, प्राप्त स्वरावली - स रे ग म प धनिसा
4 3 2 4 342

इस प्रकार सहज ग्राम एवं मध्यम ग्राम की क्रमशः म की उत्तर मन्द्रा एवं मार्गी मूर्च्छना दोनों एक ही स्थान का संकेतक हैं।

विकृत स्वरः

भरत ने जो स्वर विशेष बताये हैं वे दो ग्रामों के अन्तर्गत आने वाली अन्तर, कार्कला संज्ञायें हैं। उक्त दो स्वर साधारण के अतिरिक्त एक अन्य भी स्वर साधारण

भरत स्वर विशेष रूप से उल्लेख करता है, इसे 'कैशिक' संज्ञा दी है दोनों ग्रामों के उक्त स्वर साधारण द्वारा वीणा पर हमारे परिचित सभी स्वर स्थान मिल जाते हैं।

वादी संवादी अनुवादी विवादी स्वरः

संगीत की इन पारिभाषिक शब्दावलियों का उल्लेख भरत ने स्वरों के साथ किया है। इनके उल्लेख के पीछे भरत का मुख्य उद्देश्य स्वरान्तराल दिखाना था। अथवा इनके माध्यम से भरत ने स्वरान्तरोला के द्योतक हैं। जिन दो स्वरों में सम भाव या विश्रुतयंतर तथा सुप्त भावि 13 श्रुत्यंतर हो वे परस्पर संवादी स्वर होते हैं। ये संवाद स्थूल कानों से भी सुने जा सकते हैं। विवादी स्वर के विषय में भरत का निम्नोक्त कथन है-

"विवादिनिस्तु जिन स्वरों में 22 श्रुतियों का अन्तर हो जैसे रे-ग और ध नि। भरत के अनुवादी स्वर वे हैं जो वादी संवादी विवादी के अतिरिक्त हैं। जैसे सा के अनुवादी रे ग ध नि के मपनी, ग के मपध इत्यादि।

वादीः

इसी वादी स्वर में जब 10 लक्षणों का योग होता है तब वह 'अंश' कहलाता है। मध्ययुगीन ग्रन्थकारों ने वादी संवादी- आदि को स्वरान्तराल द्योतक न मान उन्हें रागों की पारिभाषिक शब्दावली मान लिया।

ग्रामः

ग्राम संज्ञा भारतीय संगीत की प्राचीन परम्परा के साथ जुड़ी हुई है। ग्राम की व्याख्या भरत के संगीत सम्बन्धी अध्यायों के अन्तर्गत नहीं मिलती। वहाँ तो सीधे-2। दो ग्रामों का ही उल्लेख मिल जाता है किन्तु नाट्य शास्त्र के संगीताध्याय से भिन्न एक अध्याय में 'ग्राम' के विषय की कुछ सूचना मिलती है बीसवें अध्याय में कहा गया है।

अर्थात जोतियों एवं क्षत्रियों के स्वर ग्राम बनते हैं। जिस प्रकार श्रुति भेद संगीत में ग्राम की श्रुति करता है, उसी प्रकार वृत्ति भेद साहित्य में काव्यबंध की सृष्टि करता है। साधारण अर्थ में भी ग्राम का अर्थ समूहवाची ही है। संगीत में प्रसिद्ध दो ग्राम होते हैं। बड़े एवं मध्यम ग्राम गांधार ग्राम नामक तीसरे ग्राम का उल्लेख नारद ने किया था। किन्तु वह इस लोक में प्रयुक्त नहीं होता। (गान्धार ग्राम का उल्लेख समकालीन अन्य साहित्यों तथा जैन सूत्रों में भी देखा जा सकता है) सामवेद से स्वरों की एवं स्वरों से ग्रामों की उत्पत्ति हुई है। उक्त व्याख्या के अतिरिक्त शारंगदेव कुछ संक्षिप्त रूप से भी इसकी व्याख्या प्रस्तुत करते हैं यथा- ग्रामः स्वसमूहः स्थान्मूल्छनादे समाक्षयः। अर्थात मूर्च्छनाओं का आश्रय स्वर-समूह ही ग्राम है या जिस आधार पर मूर्च्छनायें बनाई जाती हैं। (मूर्च्छना पर पृथक रूप से विचार किया गया है) भरत ने केवल दो ही ग्राम बताये हैं अतः उनकी स्पष्टता ही संगत होगी।

<u>सड्ज ग्रामः</u>

सडज ग्राम के विषय में भरत का निम्नोक्त श्लोक देखा जा सकता है-

सड्जग्रामे च सड्जस्य संवाद पंचमस्य च।

संवादो मध्यमग्रामे पंचमस्यसमस्य च।।

अर्थात् सडज् ग्राम में सा प संवाद है और मध्यम ग्राम में रे प संवाद है, सा, प नहीं, विस्तार से देखें तो यह कह सकते हैं कि सड्ज 'ग्राम' में सा, प ।3 श्रुति के अंत से संवाद करता है। मध्यम, ग्राम में प त्रिसुकित हो जाने से साथ संवाद ।2 श्रुति के अन्तर के कारण म, ग हो जाता है किन्तु साप भाव से रेप 9 श्रुतियों के अन्तर से संवाद करने लगता है। भारतीय संगीत में भी ये ही दो श्रुत्युत्तर वाली स्वर जोड़िया मुख्य संवादी जोड़िया मानी गयी हैं। षडज ग्राम की श्रुति व्यवस्था में भरत का निम्नोक्त कथन दृष्टव्य है:-

"षडजश्चतुः क्षतिर्ज्ञेय श्रृत्समस्तिश्रुतिः स्मृतः

द्विश्रुतिश्चापि गांधारो मध्यश्चन चतुःश्रुति

चतुः श्रुतिः पंचमः स्यात् त्रिश्रुतिर्धैवतस्तथा

द्विश्रुतिस्तु निषादः स्यात् षड्जग्रामे स्वरान्तरे।

अर्थात् सम, प चार- चार श्रुति के , रे ध, तीन श्रुति के, एवं ग नी दो श्रुति के षडज ग्राम में होते हैं। श्रुतियों की गिनाई अवरोही क्रम में अभिप्रेत है। क्योंकि अन्तिम श्रुति पर स्वरों की स्थिति होती है।

मध्यम ग्रामः

मध्यम ग्रामोत्पत्ति के विषय में भरत के निम्नोक्त सूत्र को ही परवर्ती ग्रन्थकारों ने भी आधार माना है-

मध्यमग्रामे तु श्रुत्यपकृष्टः पंचमः कार्य अर्थात मध्यम ग्राम में प को एक श्रुति अपकर्ष किया जाता है।

प्राचीन ग्रन्थों की समान श्रुतियाँः

प्राचीन काल के दो प्रमुख ग्रन्थ हैं एक भरत मुनि का 'नाट्यशास्त्र' तथा दूसरा शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर भारत मुनि ने अपने ग्रन्थ, 'नाट्यशास्त्र' में श्रुति चर्चा करते हुए 'षारण चतुष्टयी' में एक प्रयोग लिखा है जिससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन ग्रन्थकार अपनी श्रुतियाँ समान मानते थे। इस प्रयोग में 'प्रमाण श्रुति' का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। भरत ने दो वीणाओं के आधार पर चार षारणा का प्रयोग किया है। एक वीणा के तारों को षड्ज ग्राम के सात तारों अर्थात् सा- चौथी, रे सातवीं, ग नवीं श्रुति पर, म तेरहवीं श्रुति पर, प सत्रहवीं श्रुति पर ध बीसवीं श्रुति पर, नि बाइसवीं श्रुति पर। दूसरे वीणा को भी इसी प्रकार समान स्वरों में रखते हैं। एक वीणा अचल वीणा तथा दूसरे को चल वीणा रखा। अर्थात न दो वीणाओं में से एक वीणा को षड्ज ग्राम

में ही रखते हैं उसे अचल वीणा कहते हैं। दूसरी वीणा के पंचम स्वर को जो सत्रहवीं श्रुति पर स्थापित है। एक श्रुति कम करके सोलहवीं श्रुति पर करके देते हैं इसे चल वीणा कहा गया। एक श्रुति कम करने पर मध्यम ग्राम का वीणा हो गया। षड्ज ग्राम और 'मध्यम ग्राम' के स्वरों में केवल यह अन्तर होता है कि मध्यम ग्राम का पंचम 'षड्ज ग्राम' के पंचम में एक श्रुति नीचा होता है बाकी स्वर दोनों ग्रामों के समान होते हैं।

दूसरी षारणा में चल वीणा में प्रचम स्वर को पुनः एक श्रुति कम करते हैं जिससे- षड्ज दो पर रिषभ = पाँच गानास्यात्, मध्यमा ग्यारह, पंचम-पन्द्रह धवत- बारह तथा निषाद-बीस पर आ जाते हैं इस प्रकार चल वीणा के प्रत्येक स्वर 'अचल वीणा' से दो दो श्रुतियाँ कम हो गयीं । इस प्रकार चल वीणा के गान्धार तथा निषाद अचल वीणा के रीषभ तथा धैवत से मिल गये।

तीसरी षारणा में चल, वीणा के पंचम स्वर को पुनः एक श्रुति कम करते हैं। जिससे षड्ज एक पर रिषभ-चार पर, गान्धार-छः पर, मध्यम दस पर, पंचम-चौदह पर, धैवत-सत्रह पर और निषाद-उन्नीस पर आ जाते हैं। इस प्रकार चल वीणा के प्रत्येक स्वर अचल वीणा से तीन-तीन श्रुतियाँ कम हो गयी, इस प्रकार चल वीणा के रीषभ और धैवत स्वर अचल वीणा के षड्ज और पंचम से मिल गये।

चतुर्थ षारणा में भरत 'चल वीणा' के पंचम को पुनः एक श्रुति कम कर दिये जिससे षड्ज- बाइस पर, रीषभ- तीन पर, गान्धार-पाँच पर, मध्यम- नौ पर, पंचम- तेरह पर, धैवत- सोलह पर और निषाद-अट्ठारह पर आ जाते हैं। इस प्रकार चल वीणा के प्रत्येक स्वर अचल वीणा से चार-चार श्रुतियाँ कम हो गयी। इसी प्रकार चल वीणा के षड्ज, मध्यम तथा पंचम स्वर..."अचल वीणा' के निषाद, गान्धार और मध्यम स्वरों से मिल जाते हैं।

षारणा चतुष्टयी के प्रयोग से भरत ने यह सिद्ध कर दिया कि श्रुत्यन्तर समान हैं । भरत की ही तरह प्राचीन ग्रन्थ-कोर अपने श्रुतियों को समान मानते थे। इस प्रकार भरत द्वारा निर्दिष्ट दोनों ग्रामों (षड्ज-मध्यम) की स्वर रचना विशुद्ध शास्त्रीय है एवं वीणा पर आसानी से सिद्ध हो जाते हैं।

मूर्च्छना:

प्राचीन ग्रन्थकारों ने 'ग्राम' के रूप में अपनी मूल स्वरावली निश्चित की है। जिसके आधार पर मूर्च्छनाओं का निर्माण किया था। 'मूर्च्छनाओं' की व्याख्या भरत एवं परवर्ती ग्रन्थकारों ने निम्न प्रकार से की है-

क्रमयुक्ताः स्वराः सप्तमूर्च्छनास्त्वमि संज्ञिताः।

क्रमात्स्वराणां सप्तानामोरोद्दृश्चावरोहणम्।।

संगीत रत्नाकर

इस व्याख्या के आधार पर क्रम से सप्त स्वरों का आरोह- अवरोह करने से मूर्च्छनाओं का निर्माण होता है। सात स्वर कोई भी हो। अर्थात् किसी भी अन्तराल वाले हों, उनका प्रयोग मूर्च्छना निर्माण के निमित्त किया जा सकता है। किन्तु भरत ने ग्राम के सप्तस्वरों का उल्लेख किया है। इसका प्रमाण संगीत रत्नाकर के निम्न उल्लेख से प्राप्त हो जाता है:-

ग्राम स्वर समूहः स्यान्मूर्च्छनादेः समाश्रयः । अर्थात् ग्राम इस स्वर समूह को कहेंगे जो मूर्च्छनादि का आश्रय हो।

मूर्च्छनायें बनाने से प्रत्येक से भिन्न भिन्न स्वरान्तल मिलेंगे यथा-

षड्जग्राम - सा रे ग म प ध नि

4 3 2 4 4 3 2

रै की मूर्च्छनाये- रे ग म प ध नि सा रे

3 2 4 4 3 2 4 3

अन्तराल भिन्न हो जाने से स्वर जिसे हम कोमल कहते हैं मिलते हैं। सा रे ग म प ध नि सा उक्त क्रियाओं से भिन्न-भिन्न नवीन स्वरान्तरालों का निर्माण होता है। क्रियागत उपयोग के लिए उसका निर्माण मध्यसत्तक में करना चाहिए।

'मध्यमस्वरेण वीणेव मूर्च्छनानिर्देशः कार्यः

अनाशित्वान्मध्यमस्य" वीणा के मध्यम स्वर से मूर्च्छनाओं का निर्देश करना चाहिए क्योंकि मध्यम स्वर अविनाशी हैं। षड्ज एवं मध्यम ग्राम की मूर्च्छनाओं का नाम तथा आरंभ स्वर भरत ने किया है।

इस प्रकार दो ग्रामों की चौदह मूर्च्छनायें होती हैं भरत ने गान्धार ग्राम की उल्लेख नहीं किया है। कालान्तर में मूर्च्छनाओं के आधार पर रागों का निर्माण किया गया।

जातिः

जाति का सामान्य अर्थ समष्टी है जाति में वर्ग का महत्व होता है, जो जाति को व्यक्त करता है। भरत ने जाति की व्याख्या न करके उसके लक्षण बतायें है। जो कि दस प्रकार के हैं। सप्तक के जिस स्वर समूह में 10 लक्षण लगेंगे वे ही जाति कहलायेंगे, जाति के 10 लक्षण-

गृह, अंश, न्यास,अपनयास, अघ्पत्व, बहुत्व, षाडषत्व एवं औडुवत्व ये 10 लक्षण हैं। जिनको जाति के निर्माण में प्रमुख तत्व माना गया है अर्थात- 10 लक्षणों से युक्त स्वर समूह जाति कहलाता है जो रस प्रतीति में समर्थ होता है। जातियों का अंश स्वर गृह कहलाता है। प्राचीन काल में जिस स्वर से गायन प्रारम्भ होता था उसे स्वर कहते थे। जाति के यही 10 लक्षण कालान्तर में 'रागलक्षण' में भी स्थान पा गये, सारंगदेव के समय में 'सन्यास' विन्यास तथा'अन्तर्मार्ग ये 3 लक्षण बढ़ाकर जाति लक्षण की संख्या 13 बना दी गयी थी। मध्ययुग में जाकर गृह, अंश, न्यासादि के स्थान पर वादी, सैवादी,

अनुवादी विवादी को राग लक्षण में स्थान मिल गया।

जाति के शुद्ध एवं विकृतियों में भेदः

भरत ने जातियों के दो भेद- शुद्धा, एवं विकृता किये हैं। जाति सदा किसी न किसी स्वर सप्तक ही को लेकर चलती है। इसलिए जाति का मूर्च्छना से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जाति के 10 लक्षणों को षड्ज एवं मध्यम ग्रामों को चौदहों मूर्च्छना में लगा दें तो जातियाँ बन जायेंगी भरत 18 जातियों का वर्णन किया है-

(1) षाडवी (2) आर्षभी (3) गांधारी (4) मध्यमा (5) पंचमी (6) नौशादी इत्यादि।

जातियों के विषय में भरत ने अपने 28 वें अध्याय में उल्लेख किया है।

भरत काल में रागः

भरत के ग्रन्थ में जातियों का जो वर्णन मिलता है। उससे यह प्रतीत होता है कि आज जिस अर्थ में 'राग' भारतीय संगीत का आवश्यक तत्व है। उस समय प्रचार में न था। 'राग' स्वर एवं भाव का ऐसा समन्वय है जो उसे विशेष स्वरूप प्रदान करता है राग के आज जो तत्व पाये जाते हैं उनका कुछ अविकसित रूप भरत में जातियों के रूप में मिलता है जातियों के जो लक्षण भरत ने कहे हैं वे रागों पर भी लागू होते हैं। किन्तु 'जाति' जिस प्रकार एक समष्टी का द्योतक हैं 'राग' एक विशिष्ट व्यक्त्वि का द्योतक है। जातियों की संख्या सीमित है परन्तु रागों की संख्या बहुत है।

राग विकसित तत्व है एवं जाति उसका पूर्वरूप है, भरत ने जातियों का उल्लेख किया है। भरत काल में 'रागपरम्परा' जाति की भाँति प्रचलित नही है। परन्तु भरत के 28वें अध्याय में एक स्थल पर 'राग संज्ञा' का प्रयोग किया है। मृदंग वादन में कानी ऊँगली का प्रयोग करते समय राग संज्ञा का पारिभाषिक अर्थ में, भरत ने उपयोग किया है। किसी प्रकार तालाध्याय में पातों के सन्दर्भ में भी 'ध्रुव' नामकपात को भरते ने राग प्रणाली के उपयुक्त बताया है।

ध्रुव:तु मद्रकं पात रागमार्ग प्रयोजका:"

अर्थात् भरत काल जाति एवं राग दोनों परम्पराओं का प्रचलन था। यद्यपि रागों का प्रचलन जाति की भाँति विस्तृत रूप में नहीं था। भरत के परवर्ती विद्वानों ने राग परम्परा का सविस्तार विवेचन किया है जिनमें मतंग का नाम प्रमुख है। उन्होंने अपने ग्रंथ , वृहद्देशी में रागों का उल्लेख किया है। भरत ने नाट्यशास्त्र में वर्ण अलंकारों का रसोत्पत्ति के विषय में विशेष महत्व दिया है।

वर्ण:

भरत ने चार वर्ण उदात्त, अनुदात्त, स्वरित एवं कंपित आदि बताये हैं। उसी प्रकार संगीतोपयोगी , चार वर्ण आरोही, अवरोही, स्थायी, एवं संचारी भी बताये हैं। भरत का कथन है कि शरीर की शरीर की वीणा में उर कण्ठ एवं सिर ये तीन स्थान होते हैं इन्हीं स्थानों से काकुभेद का उपयोग होता है।

अलंकार:

भरत ने अलंकारों के संगीत में एक आवश्यक तत्व माना है। अलंकार का सामान्य अर्थ सजावट से लिया जाता है। भरत का कथन है जिस प्रकार चन्द्र रहित रात्रि जल विहीन नदी पुष्प रहित लता एवं भूषण हीन स्त्री की अवस्था होती है वही अवस्था बिना अलंकार के गीत की होती है।

गीतियाँ:

भरत ने नाट्यशास्त्र में 4 गीतियाँ विभिन्न गेय छन्दों के अन्तर्गत रखा है। गीत के पदों (शब्दों में अक्षरों की संघटनासे 'संभविता' गीत एवं लघु अक्षरों की संघटना से पृथुल गीत की उत्पत्ति होती है मागधी एवं अर्धमागधी गीतियों का सम्बन्ध गीत के पदों, शब्दों की आवर्ती या पुनरावृत्ति की प्रक्रिया के साथ है ध्रुव में छंद निरीह रहता है। यह

स्त्रियाँ सम्भवतः छंद सम्बंधी अनियतावस्था में भी लघु गुरू के क्रम भेद मात्र से काम करती होंगी।

धातुः

धातु तंत्री वाद्यों के वादन में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित हैं। तत् वाद्यों से सम्बन्धित धातु विस्तार धातु, कर्णधातु, अविधधातु व्यंजनधातु आते हैं।

भरत का ताल सम्बंधी विवरण (घनवाद्य):

भरत ने 31वें नाट्यशास्त्र अध्याय में ताल व्यंजक अध्याय दिया है। 'ताल' शब्द तल धातु से उत्पन्न होता है जिसका अर्थ हाथ की हथेलियों से लिया जा सकता है। मौलिक रूप से यह हाथों द्वारा ताल या आघात से काल को अभिव्यक्ति करने का उल्लेख प्रतीत होता है नाट्यशास्त्र में ताल के प्रमुख तत्व आदिकाल में उत्पन्न 5 तालों के नाम तालों की कलायें एवं इनकी वृद्धि आदि से तथा मिश्रण से अनेक तालपत्ति के मार्ग, ताल की क्रियायें, गृह यति लय, मात्रा एवं पाट का विस्तृत वर्णन मिलता है नाट्यशास्त्र में ताल की उत्पत्तियाँ तिस्त्र, या मिश्र यमचंतरस्त बताई गयी है। उन्हीं के अन्तर्गत विभक्त प्रमुख 5 तालों का उल्लेख नाट्यशास्त्र में मिलता है, तालों के प्रमुख अंग मार्ग एवं कला, क्रिया,गृह यदि, लय, पाट इत्यादि।

नाट्य शास्त्र में ध्रुवोः

नाट्य के अन्तर्गत विभिन्न परिस्थितियों में प्रयुक्त होने वाले गीतों का ध्रुवा के नाम से विवरण भरत ने अपने ग्रन्थ के बत्तीसवें अध्याय में दिया है। नाट्य से स्वतंत्र गीत में ध्रुवाओं का उपयोग नहीं समझा जा सकता है। इसीलिए नाट्य से निरपेक्ष संगीत के ग्रन्थों में कहीं भी ध्रुवाओं का उल्लेख प्राप्त नहीं होता। भरत ने पाँच प्रचार की प्रमुख ध्रुवायें बताई हैं-

प्रावेशिकी, आक्षेपिकी, प्रासादिकी, अन्तरा एवं नैष्कामिकी इनके विषय में भरत का यह कथन है कि कुलाचारादि के अनुसार मनुष्यों का नाम जिस प्रकार देखे जाते हैं, उसी प्रकार स्थान एवं आश्रय अर्थात नाट्यगत, अवस्थानुसार ध्रुवाओं का भी नाम रखा गया है। नाट्य में प्रवेश के समय जो गायन हो वह प्रावेशिकी, अंक के अन्त में निष्क्रमण के समय गाया जाये वह नैष्कामिकी क्रम का उल्लंघन करके द्रुत लय में नृत्य विधि के साथ जो गायन हो वह आपेक्षिकी तथा जिससे रंग, राग एवं प्रसाद का उद्भव हो वह प्रासादिकी ध्रुवा तथा विषाद, विस्मरण , क्रोध, मद मूर्च्छा आदि में जो गायन हो वह अन्तरा ध्रुवा के अन्तर्गत आयेगा।

ध्रुवाओं के प्रयोग में चार जातियाँ बताई गयी हैं- द्रुता, चपला, उद्गता या अपकृष्टा एवं धृति। चारों में निम्न तीन प्रकार के वृत्ति प्रयोग आ सकते हैं यथा- गुरुप्राय, लघुप्राय एवं गुरु लघ्वक्षर। आठ अक्षरों के वृत्तों से प्रारम्भ करके भरत ने चौसठ ध्रुवायें विभिन्न छोटे बड़े वृत्तों की ध्रुवा बताई है। इस प्रकार ध्रुवाओं का सीधा सम्बन्ध पदगत वृत्त से है।

नाट्य में गीत का प्रयोजन बताते हुए इसी अध्याय में एक स्थ्ल पर भरत ने अत्यन्त महत्वपूर्ण बात कही है जिससे गीत का महत्व स्पष्ट हो जाता है। भरत का कथन है कि जो बात वाक्यों द्वारा नहीं कही जा सकती उसे गीत से कहनी चाहिए। जब गीत को इतना उच्च स्थान प्राप्त था तो अवश्य नाट्य से पृथक गीत भी बहुत उच्च कोटि का रहा होगा इसी अध्याय के अन्त में गायक के गुण दोश तथा कण्ठ स्वरादि की विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला है।

गायकों एवं वादकों के गुण दोष:

भरत ने अपने समय के प्रचलित संगीत एवं संगीतकारों पर भी प्रकाश डाला

है। गायक को युवा होना चाहिए। मधुर स्वभाव एवं स्निग्धकण्ठ स्वर युक्त होना चाहिए। गायक को लय,ताल, कला, विभाग उनके विभिन्न प्रमाणादि का ज्ञान तथा उचित प्रयोग जानना चाहिए। गायकों के साथ गायिकाओं की भी विशेषतायें बताई हैं। सुन्दरी गुणवती, हृष्ट पुष्ट कोमल, मधुर कण्ठी तथा वह ताल लयादि में निपुण है।

वीणा तथा वेणु वादकों के गुण:

इन वादकों को स्वर, लय तथा गीत के विभिन्न प्रकारों के साथ वादन का ज्ञान होना चाहिए तथा एक अच्छे गायक के गुण होने चाहिए। मधुर कण्ठी तथा वादन संगत में निपुण तथा लय स्वर का अच्छा ज्ञान होना चाहिए।

गायकों के दोष:

कपिल, अन्यवस्थित अस्थिर, दांतपीसकर गाना, आकृति विकृत करना, नाक से गाना, स्वर ताल का उचित सथान पर प्रयोगन करना आदि।

इस प्रकार ग्रन्थ के बत्तीसवें अध्याय में भरत ने 458 से 483 श्लोकों के अन्तर्गत चर्चा की है।

निष्कर्ष यह है कि ई0पू0 की शताब्दियों में संगीत विकसित हो चुका था। तथा इसका प्रयोग सर्वव्यापी हो गया था। गुरू शिष्य परम्परा भी निश्चित रूप से विकसित हो गयी थी। यदि यह परम्परा इतनी सुदृढ़ न होती तो कदाचित भरत को इस प्रकार के वर्गीकरण करने की आवश्यकता नहीं होती।

नाट्यशास्त्र में अवनद्य वाद्य:

भरत काल में पूर्वोक्त चतुरविध वाद्य ज्ञात थे, भरत के अन्तिम 33वें अध्याय में अवनद्य वर्ग के वाद्यों का ग्रन्थ में वर्णन है। इस अध्याय से इन वाद्यों के प्रकार,

उनकी विशेषतायें तथा उपयोग के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है। इसमें मृदंग, पड़व, एवं दुर्दुर के वादन के विषय में विशेष रूप से सामग्री प्राप्त की जा सकती है। भरत के पूर्व किसी अन्य लेखक ने इसका उल्लेख नहीं किया है। अवनद्य वाद्यों से सम्बन्धित लगभग सभी तथ्यों का भरत ने 33वें अध्याय में इतना विस्तृत एवं पूर्ण विवेचन कर दिया है कि परवर्ती ग्रंथ में नवीन अंश बहुत ही कम मिलेंगे। अवनद्य वर्ग के वाद्यों के लिए भरत ने पुष्कर संज्ञा का प्रयोग किया है।

पुष्करों का प्रयोगः

नाट्य में लगभग सभी वाद्यों का प्रयोग समय, स्थिति,सम्वेग, भावों के औचित्य एवं अनुकूलता को देखकर प्रयोग किया जाता है। वाद्यों का प्रयोग उत्सवों में, राजकीय जुलूसों में मंगल कार्यो में विवाह आदि शुभ अवसरों पर युद्ध क्षेत्र एवं ऐसे ही अन्य स्थलों पर वाद्यों का वादन आवश्यक था, इनकी पुष्टि समकालीन साहित्यों, लेखों तथा पुरातात्विक अवशेषों से प्राप्त होता है।

छंद प्रयोगः

छद दो प्रकार के बताये गये हैं एक तो केवल स्वरों से सम्बन्धित होते हैं दूसरा सार्थक अक्षरों से सम्बन्धित स्वरों से सम्बन्धित 'छंद' - अनेक वाद्यों पर आधारित होते हैं। मानवीय शरीर वीणा में सात स्वर होते हैं। जो संगीत सम्बन्धी वाद्यों को स्वर प्रदान करते हैं। द्वितीय प्रकार के छंद अनेक भावों एवं रसों की उत्पत्ति में समर्थ होते हैं। एवं स्वरों से सम्बन्धित छंद भिन्न-भिन्न वाद्यों पर आधारित होते हैं। गायक जिन स्वरों का गायन करे उन्हें वाद्यों से भी वादक उत्पन्न करता था। आधुनिक सिंगीत में जब भिड़ंत की जाती है तो यही तथ्य सामने आता है अर्थात गायक जैसे तान स्वरों लयकारी का प्रयोग करता है ठीक उसी के प्रत्युत्तर में वादक वाद्यों में तान स्वर लय का प्रयोग करता है।

ध्रुवाओं में पुष्करों का वादनः

यद्यपि 'ध्रुवा' नाट्य के गीत का प्रकार है। तथापि कुछ प्रमुख ध्रुवाओं में पुष्करों का कैसा वादन है यह उल्लेख करना सुविधाजनक होगा, 'प्रावेशिकी' में भी अनुगत ध्रुवाओं में तीनों लयों का प्रयोग होता था। प्रासंगिकी में ध्रुत लय में वादन होता था। कुशल वादकों को वादन करते समय ध्रुवाओं के पीछे एक भाग मात्राओं का प्रयोग नाट्यानुकूल करना चाहिए।

नाट्यशास्त्र में नृत्यः

नाट्यशास्त्र में सर्वप्रथम नृत्य का शास्त्रीय विवरण प्राप्त होता है। भरत ने ग्रंथ के चौथे अध्याय में नृत्य के विभिन्न अंग, प्रत्यंग हाथ, पैर एवं अन्य अंगों की गतियों का उल्लेख किया है। नृत्य परम्परा भी संगीत के अन्य तत्वों की भाँति पूर्ण रूप से विकसित अवस्था में थी। भरतोल्लिखित कुछ मुद्रायें समकालीन मूर्ति कला में भी देखी जा सकती है इसके अतिरिक्त आगे चलकर गुप्त काल के पश्चात् खजुराहो, उड़ीसा मूर्तिकला, एवं दक्षिण के चिदाम्बरम् के मन्दिरों की मूर्तिकला मं भरतोल्लिखित अनेक मुद्रायें प्राप्त हैं। संक्षिप्त में भरत के नृत्य सम्बंधी महत्वपूर्ण तत्व निम्नलिखित है। नृत्य में शरीर के सभी अंगों का प्रयोग किया जाता है। नृत्य के उपांगों के अन्तर्गत सिर, द्रृष्टि, नेत्र पुतली, पलक भौहि नाक, होठ,गाल, ठोठी , मुख एवं गले आदि से सम्बन्धित मुद्रायें आती हैं। नृत्य के उक्त विस्तृत उल्लेखों को देखते हुए , यह कहना अनुचित न होगा कि भरत काल तक नृत्य निश्चय ही, इतना लोकप्रिय एवं प्रचलित रहा होगा कि उसके समस्त विवरण का इतना शास्त्रीय स्वरूप प्राप्त हो सका।

नृत्य के 2 प्रकारों तांडव एवं लास्य दोनों का उल्लेख नाट्यशास्त्र में मिलता है। ताण्डव नृत्य अंगहारों और रेचकों के साथ किया गया था। जबकि लास्य पार्वती

द्वारा मनमोहक नृत्य किया गया था। इस नृत्य में मृदंग, भेरी,, पटहमतंमा, डिमडिम, गोमुख, पड्डव, दर्दूरादी , संगत के रूप में प्रयुक्त किये गये थे। नृत्य मंत्रालय का महत्व होता था। नृत्य के साथ गीत एवं वादन भी होता था। इसका पुष्टिकरण भी एक अंश से हो जाता है। जहा तडुंरिसी द्वारा रचित गीत की कथा मिलती है। ताण्डव नृत्य बहुधा देवों की पूजा के लिए किया जाता था। तथा लास्य श्रृंगारिक भावों से युक्त नृत्य होता था। नृत्य को लोग अधिक पसंद करते थे। भिन्न भिन्न उत्सवों में नृत्य शुभ माना जाता था।

अमरावती की मूर्तिकला में अंकित नृत्यदृश्यों का भरतोल्लिखित नृत्य मुद्राओं से समीकरण:

अमरावती की मूर्तिकलाओं में चार नत्यांगनायें हैं। जिनमें से मध्यवाली आधुनिक भरत नाट्यम के नृत्य के अतारिप्पू मुद्रा का स्मरण दिलाता है। उसकी गति देखकर ऐसा लगता है कि नर्तकी तुरंत रंगमंच पर आयी है। भरत ने प्रवेश पर विस्तृत विवरण अपने ग्रन्थ में दिया है। उसके हाथ में पुष्पांजलि है। अमरावती की कला का एक अंत:पुर का भी दृश्य है जिसमें नर्तकी अपनी कौशल दिखा रही ह। वह अपने पैरों को अतिक्राटकरण में रखकर, नृत्य करती दिखायी गयी है जो कि पुरुषार्थ का संकेत करती है। यह ब्रिटिश म्यूजियम में है। अमरावती की एक और मूर्तिकला कलकत्ता के संग्रहालय में है। इसमें कुछ देवताओं को प्रसन्नता से नृत्य करते दिखाया गया है और कुछ वाद्य बजा रहे हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भरत के नाट्य शास्त्र में उल्लिखित मुद्राओं का अंकन समकालीन मूर्तिकला में अपनाया गया था। भरत ने प्रत्येक मुद्रा की परिस्थितियाँ एवं उससे सम्बन्धित विभिन्न भावों का भी निरूपण विस्तार से किया है। जो अभिनय के अधिक निकट है।

दत्तिल कृत- दत्तिलमः

दत्तिल मुनि का ग्रन्थ जो संगीत पर लिखा गया है पूर्ण ग्रन्थ प्रतीत नहीं होता। यह नाट्य शास्त्र के लेखक के नाट्यशास्त्र का संक्षिप्त स्वरूप है इसके विषय में यही कहना प्रर्याप्त होगा कि भरतोल्लिखित संगीत सम्बंधी सभी तत्वों का दत्तिल के ग्रन्थ में प्रायः नामोल्लेख मात्र मिलता है। स्वर प्रकरण में सप्त स्वर, तीन स्थान, दो ग्राम तथा गांधार ग्राम का उल्लेख वादी संवादी आदि स्वर भेद तथा मूर्च्छनाओं का उल्लेख मिलता है। इस प्रकरण में सबसे महत्वपूर्ण बात यह कही गयी है कि षड्जग्रामिक 'ग' को दो श्रुति चढ़ाकर 'घ' बना दें तो मध्यम ग्राम तथा उसी 'घ' को दो श्रुति उतार दें तो वह षड्जग्राम बन जायेगा। 84 मूर्च्छनाओं तानों का मात्र उल्लेख किया है। गिनती नहीं की है। 5040 कूट तानों का उल्लेखं किया है इसका भरत कोई उल्लेख नहीं करता। स्वर साधारण का उल्लेख भरत का ही अनुकरण है। जातियों के नाम के अतिरिक्त इनके लक्षणों का भी अल्प विवरण दिया है। ताल तथा अलंकारों का भी उल्लेख भरत ही की भांति है। भरत ने ध्रुवा वाद्य पुष्करादि का उल्लेख इस ग्रन्थ में नहीं मिलता है।

यह ग्रन्थ संक्षिप्त होने पर भी इसका महत्व संगीत के स्वतंत्र ग्रन्थ के रूप में समझा जा सकता है।

नाट्यशास्त्र और दत्तिलम के मध्य संगीत का कोई भी अन्य ग्रन्थ नहीं लिखा गया। इसलिए नाट्यशास्त्र तथा दत्तिलम संगीत शास्त्र का प्राचीन एवं प्रमाणिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

मतंगकृत- 'बृहद देशी':

गुप्त कालीन संगीत पर प्रभाव डालने वाला एवं नाट्य से संगीत का ग्रन्थ मतंग

का वहद देशी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। गुप्तकाल भारतीय इतिहास एवं संस्कृति का स्वर्णयुग कहा जाता है। इस काल में सभी कलाओं की उन्नति हुई इसे विकास का चरमोत्कर्ष काल कहा जा सकता है। इस काल में मतंग का वृहद देशी अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के भी कई अंश खण्डित हैं जो आज अप्राप्य हैं। यह ग्रन्थ गुप्तकालीन विकसित संगीत कला का द्योतक माना जा सकता है। भरतोल्लिखित नाट्यशास्त्र के अधिकांश विषय उसी रूप में मिलते हैं फिर भी मतंग के ग्रन्थ में नवीनता है। यह ग्रन्थ छठीं शताब्दी में लिखा गया था।

वृहद् देशों में रागाध्याय, स्वरागाध्याय एवं प्रबंधाध्याय मिलते हैं लेकिन नृत्य एवं वाद्याध्याय नहीं मिलते हैं। भरत से भिन्न इस ग्रन्थ में कुछ नवीनता है जैसे- गांधार ग्राम का उल्लेख मात्र द्वादश स्वर मूर्च्छना पद्धति 184 मूर्च्छना तानों का यज्ञ नामों से सम्बन्ध जोड़ा है। जातियों की मूर्च्छनायें भी बताई गयी हैं। राग का अध्याय देशी, रागों का उल्लेख,जो विशेष महत्वपूर्ण है। प्रबंधाध्याय के अन्तर्गत नाट्य की ध्रुवाओं के स्थान पर स्वतंत्र संगीत की बन्दिशों का उल्लेख है।[1]

द्वादश स्वर मूर्च्छना का प्रयोजन मतंग ने त्रिस्थान प्राप्ति अर्थात् प्रत्येक मूर्च्छना में मन्द्र मध्य एवं तार तीनों स्थानों की प्राप्ति बताया है। इस प्रकार प्रत्येक मूर्च्छना में 7 की अपेक्षा 12 स्वर लेने का विधान बताया है।

वृहददेशी ग्रन्थ से आठ अध्याय हैं। प्राचीन काल के ग्रन्थकारों में मतंग मुनि का अपना मुख्य स्थान है। इसमें ग्राम राग तथा जातियों का उल्लेख है। मतंग ने रागों की उत्पत्ति जातियों से मानी है। इस ग्रन्थ में ग्राम, मूर्च्छना, साम गान के तीन स्वरों जाति के लक्षण जाति के प्रकार आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है। प्रबंधों को मतंग

1- वृहद्देशी- पृष्ठ 22 सा च मूर्च्छना ,द्विविधा सप्त स्वर मूर्च्छना।

ने देशी संगीत के अन्तर्गत रखा है। ध्रुवाओं से प्रबंध का यह भेद है कि 'ध्रुवा' में नाट्य परिस्थिति प्रमुख रहती है अर्थात 'ध्रुवा' इनके आश्रित है। इसके विपरीत जब कोई रचना या प्रबंध गाया जाता है तो उससे स्वतः ही किसी अवस्था का निर्माण होता है।

गुप्तकालीन संगीत के निष्कर्ष स्वरूप इतना ही कहना अतिशियोक्ति नहीं होगा कि इस काल में मतंग कृत वृहद्देशी ग्रन्थ की रचना हुई तथा संगीत एवं संगीतकारों का महत्व समाज में अधिक उन्नत अवस्था में हो गया था। कोई भी अवसर संगीत से रहित नहीं होता था। पूजा में भी इसका महत्वपूर्ण स्थान था। संगीत का देश के विभिन्न भागों में प्रचार हो गया था, देशी संगीत का यह ज्वलन्त उदाहरण है कि - इतने अधिक वाद्यों की गणना उक्त साहित्यों में की गयी है। इस काल में देशी तत्वों का विपुल विस्तार हुआ था।

कालिदास कृत ग्रन्थों तथा शूद्रक नाटकों में संगीतः

गुप्तकाल की साहित्यिक कृतियों में उक्त लेखकों की रचनायें अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यह संगीत के व्यावहारिक एवं शास्त्रीय दोनों ही पक्षों पर समान रूप से प्रकाश डालती है। कालिदास के ग्रन्थों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें संगीतकार का संस्कार था। क्योंकि पार्वती की आवाज की मधुरता का वर्णन करते समय वे अनमिली वीणा की कर्कश वाणी का निजी अनुभव भी बताते हैं।

उक्त साहित्यों में संगीत के लिए पूर्व प्रचलित गान्धर्व संज्ञा के साथ संगीत संज्ञा भी बहुतायत से प्राप्त होता है। संगीत को कलाओं के अन्तर्गत रखा गया था। यह उल्लेखनीय है कि शूद्रक ने 'संगीत का उल्लेख कला कौशिकी रूप में किया है। कला का प्रचार इस काल में प्रत्येक वर्ग में देखा जाता है। गायन, वादन तथा नर्तन उन्नत अवस्था में था।

गायनः

गायन के लिए 'गीत' संज्ञा का उपयोग किया गया है। गायन के प्रमुख दो स्वरूपों में- शास्त्रीय तथा लौकिक अनेक प्रकारों का वर्णन है। लौकिक गायन का प्रकार महिलाओं में अधिक था। गायन के अनेक प्रकार थे।

यशोगान- राजाओं के यशगान प्रसंशा सम्बन्धित गान।

विजयगीत- राजाओं के विजय सम्बन्धित गान।

मंगलगान- पूजा तथा शुभ अवसरों से सम्बन्धित गान।

स्तुति गान- ईश्वरोपासना से सम्बनिधत गान।

राग गायनः

गायन में लय, ताल, हाव भाव, राग , गीति , कर्ण,मूर्च्छना, आलाप, प्रक्रिया, गीत का रस भाव। सप्त स्वर (युद्ध स्वर) विकृत स्वरों आदि का प्रयोग प्रमुख तत्व थे। रागों का उद्भव इस काल तक हो चुका था। कालिदास ने भी यथा स्थान रागों का वर्णन किया है। 'कौशिक' भिन्नुक, वलन्तिका तथा कुकुम रागों का उल्लेख है। कालिदास ने 'वस्तु' संज्ञा दी है जो प्रबंध का पर्यायवाची है। अभ्यासक्रम के लिए 'वर्ण' शब्द का प्रयोग है।

वादनः

इसमें वीणा प्रमुख है। वीणा वादन द्वारा ही स्त्रियों ने अग्निवर्ण को आकर्षित किया था। वासवदत्ता की घोषवती वीणा प्रमुख है।

अवनद्ध वाद्यः

'मृदंग' सर्वाधिक महत्वपूर्ण वाद्य था। नृत्य गीत के संगत में बहुतायत प्रयोग होता था। इसके अतिरिक्त अवनद्ध वाद्य के अन्तर्गत दुन्दुभि , नन्दि, पटह, ढक्का,

मध्यकालः

सन् 647 ई0 से 1290 तक देश छोटे-छोटे राज्यों में बॅट गये थे। जो बराबर एक दसूरे के ऊपर आक्रमण करते रहे। युद्ध क्षे। होने के कारण इन्हें संगीत के आत्मिक सौन्दर्य को समझने का अवकाश नहीं मिला। फलस्वरूप इस काल में संगीत अनेक वर्गो में बॅट गया। प्रत्येक वर्ग अपने दृष्टिकोण से संगीत का विकास करण रहा। इन्हीं संकीर्ण दृष्टिकोण के कारण संगीत के विभिन्न घराने बन गये। एक घराने के कलाकार दूसरे घराने के गायक वादक को नीचा दिखाने लगे। शास्त्रीय संगीत जनता से हटकर सामन्तशाही बन गया था राजाओं की प्रशंसा तथा राजदरबारों में गायन श्रृंगार और प्रशंसा में सिमट गया। इस प्रकार संगीत अपनी नैतिकता के पवित्र स्तर से गिरने लगा। लेकिन फिर भी संगीत के विद्वान अपनी साधना को नहीं छोड़े और शास्त्रीयत के आधार पर संगीत शिक्षण कार्य करते रहे। राजपूत राजा संगीत प्रिय होते थे और वे अच्छे संगीतज्ञों का सम्मान करकते थे उनके दरबारों में संगीतज्ञों को राज्याश्रय भी प्राप्त था। उस काल के उपलब्ध राग रागिनियों के चित्रों से यह ज्ञात होता है। राजपूत रमणियाँ संगीत प्रिय होती थी। त्योहारों, पूजा पाठ एवं शुभ अवसरों पर गायन वादन तथा नर्तन का कार्यक्रम होता था।

इसी काल में भारत में यवनों के आक्रमण होने लगे जिससे संगीत, कला तथा साहित्य पर भी असर हुआ।

यवनों के आक्रमण के कारण आध्यात्मिक विकास एकदम अवरुद्ध सा हो गया। संगीत में श्रृंगारिक- वातावरण और भोग विलास की प्रधानता होने लगी हिन्दू, मुसलमान होने लगे तथा धर्म परिवर्तन के कारण यवन संगीत तथा यवन संस्कृति की प्रशंसा होने लगी। विजयी मुसलमान राजा अपने साथ कुछ संगीतज्ञों को भी लाये थे जिसके

दर्दुर, पणव, भेरी, डिण्डिम,मर्दल इत्यादि वाद्यों का वर्णन है। लकड़ी द्वारा भी वाद्यों का वर्णन है। इसके लिए बास की लकड़ी का प्रयोग होता था।

इसके अतिरिक्त सुषिर, तथा तूर्य वाद्यों का वर्णन है। नृत्य में- आंगिक, वाचिक एवं सात्विक का कालिदास ने वर्णन किया है।

नारद कृत-संगीत मकरंद:

संहिताकार नारद तथा शिक्षाकार नारद के अतिरिक्त एक और नारद हुए हैं। जिन्होंने संगीत मकरंद ग्रन्थ की रचना की है। इस ग्रन्थ का काल आठवीं शताब्दी माना गया है।

इस ग्रन्थ में पुरुष राग, स्त्री रागिनी, नपुसंक राग, राग वर्गीकरण, स्वर, मूर्च्छना का वर्णन, ताल वर्णन, रागों की जाति तथा गायन समय आदि का वर्णन है। नाद के भेद तथा वीणा के अट्ठारह भदों का वर्णन इस ग्रन्थ की विशेषता है। संगीत मकरंद में सर्वप्रथम रागों को पुरुष तथा स्त्री की रागनियों के नाम से वर्णित किया गया है। संगीत के प्रयोगात्मक तथा सैद्धान्तिक सृष्टि से यह ग्रन्थ अत्यन्त विशिष्ट स्थान रखता है।[1] इस ग्रन्थ में भरतकृत नाट्यशास्त्र तथा मतंग कृत वृहद देशी का अनुसरण करते हुए संगीत के शास्त्रीय एवं सैद्धान्तिक सभी प्रकरणों पर प्रकाश डाला गया है। संगीत के गायन, वादन तथा नर्तन के विषय में भी वर्णन है।साथ ही साथ राज दरबारी में संगीत के प्रोत्साहन तथा कलाकारों के सम्मान आदि का वर्णन है।

1- संगीत मकरन्द - नारदकृत- सम्पादक लक्ष्मी नारायण पृष्ठ- 5, 7, 9, 16, 17, 18

कारण भारतीय संगीत के शासत्रीयता पर प्रभाव पड़ा। उत्तर भारत में संगीत में बदलाव आने लगा परन्तु दक्षिण भारत में आन्तरिक द्वन्द्व कम होने के कारण संगीत का शास्त्रीय और सैद्धान्तिक पक्ष की उन्नति एवं रक्षा होती रही।

यह ऐतिहासिक सत्य है कि भारत में जहाँ जहाँ मुस्लिम आक्रान्ता आये वहाँ सूफी फकीर पहले से विद्यमान थे।[1] भारत आये सूफी सन्तों ने जहाँ एक तरफ अपने विचारों का प्रचार किया ,वहीं दूसरी तरफ वह भारतीय संस्कृत को समझने में संलग्न रहे और अपने आचरण को भारतीय संस्कृत में ढाल लिया। इस काल में जहाँ भरतीय विद्वान संगीत की पुस्तकों के रूप में सुरक्षित रखने का प्रयास कर रहे थें वहीं दूसरी तरफ सूफी सम्प्रदाय प्रत्यक्ष संगीत का आनन्द बिखेरते रहे थे।

आचार्य अभिनव गुप्त द्वारा दसवीं शताब्दी में अभिनव भारती नामक ग्रन्थ की रचना की। 1175 ई0 में चालुक्य वंशीय सौराष्ट्र नरेश ने 'संगीत सुधाकर' की रचना की तथा सोमराजदेव ने संगीत रत्नावली पुस्तक की रचना की। इस युग तक भारत में मुसलमानों का प्रभाव बढता जा रहा था। सूफी संतों ने भी अपनी संस्कृत तथा संगीत को जन मानस तक पहुँचाने में सहायता की। इनमें बाबा शेख, सत्तार मसूद, दाता गंज बख्श तथा 'हाजी सूफी' का नाम उल्लेखनीय है।

भारत के इतिहास में बारहवीं शताब्दी तक का काल अत्यधिक महत्वपूर्ण रहा। इस काल तक विदेशियों के बराबर आक्रमण होते रहे। जिससे भारतीय संगीत, साहित्य और संस्कृति में परिवर्तन होने लगा।

बारहवें शताब्दी के उत्तरार्ध में बंगाल के जयदेव कृत 'संगीत गोविन्द' का आविर्भाव हुआ जिसमें राधा, कृष्ण, तथा सखियों का श्रृंगार रस से परिपूर्ण गीतों की रचना

1- मुसलमान और भारतीय संस्कृति- पृ0 26

हुई। राजा लक्ष्मण सेने के राज कवि के नाते जयदेव की ख्याति हुई। संस्कृत साहित्य में यह अनुपम गेय साहित्य प्रबंध पदावली आज भी प्राप्त है। गीत गोविन्द को 'प्रबंधात्मक गीति काव्य' कहा जाता है। भक्ति एवं प्रेम-भाव से ओत-प्रोत है। संगीतज्ञ एवं कवि जयदेव को उत्तर भारत का प्रथम गायक होने का सम्मान प्राप्त था।

"गीत-गोविन्द' की विशेषता पर मुग्ध होकर एडविन अर्नाल्ड ने अंग्रेजी में गीत गोविन्द का अनुवाद 'द इण्डियन सौंग ऑफ सौंग्स' अर्थात गीतों में भारतीय गीत' नाम से किया है।

<u>शारंगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर':</u>

पण्डित शारंगदेव देवगिरि (दौलताबाद) के यादववंश राजा के दरबारी संगीतज्ञ थे। इनका समय 1210 से 1247 ई0 के मध्य का था।...

संगीत के महत्वपूर्ण ग्रन्थों में 'संगीत रत्नाकर' एक विशिष्ट महत्वपूर्ण संगीत का ग्रन्थ माना जाता है। शारंगदेव के समय में संगीत पद्धति विखर चुकी थी, जिसे शारंगदेव ने पुनः एकत्र किया।

तेरहवीं शताब्दी, के उत्तरार्द्ध में पण्डित शारंगदेव के 'संगीत रत्नाकर' ग्रन्थ की रचना की। इसमें नाद, श्रुति, स्वर,ग्राम, मूर्च्छन जाति, वर्ण, अलंकार की परिभाषा, वाग्गेयकार के लक्षण काकु, प्रबंध, तत्-वितत्, घन, सुषिर, अवनद्ध वाद्यों के भेद, रागों का वर्णन, रागों का वर्गीकरण , उपराग आदि का सविस्तार वर्णन किया है। दक्षिणी तथा उत्तरी संगीत विद्वान 'संगीत रत्नाकर' को आधार ग्रन्थ मानते हैं। आधुनिक अनेक संगीत के ग्रन्थों में संगीत रत्नाकर का उदाहरण पाये जाते हैं। शारंगदेव अपने इस ग्रन्थ में मतंग से अधिक विवरण दिये हैं। इस ग्रन्थ में गायन, वादन तथा नृत्य तीनों का विवरण है। इसमें कुल मुख्य सात अध्याय हैं।

(1) स्वराध्यायः

इसमें नाद का स्वरूप, नादोत्पत्ति और उनके भेद, सारणाचतुष्टय, ग्राम, मूर्च्छना तानानेरूपण, स्वर और जाति-साधारण वर्ण- अलंकार, तथा जातियों का विस्तृत वर्णन है।

(2) राग विवेकाध्यायः

ग्राम राग उनके विभाग, रागांग, भाषांग, क्रियांग तथा उपांग शब्दों का स्पष्टीकरण और उनके नामों को दिया है।

(3) प्रकीर्णकाध्यायः

इसमें वाग्गेयकार के लक्षण गीत के गुण दोष तथा गायन के गुण दोष का वर्णन है।

(4) प्रबंधाध्यायः

गीत के अनिवद्ध तथा विवद्ध भेद, धातु और प्रबंध भेद, तथा अंगों आदि का विवरण प्राप्त है।

(5) तालाध्यायः

इसमें अवनद्ध वाद्य के अन्तर्गत ताल, मात्रा लय आदि का वर्णन है। छठें अध्याय में सुषिर, घन वाद्यों का भेद, वादन विधि, तथा वादकों के गुण दोष का वर्णन है।

(7) नर्तनाध्यायः

इस अध्याय में नृत्य, नाट्य और नृत्य पर विवरण प्राप्त होता है। नर्तन सम्बन्धी प्रत्येक बातों पर प्रकाश डाला गया है।

संगीत रत्नाकर में कुल 264 रागों का वर्णन है। यद्यपि पं0 शारंगदेव ने भरत के नाट्यशास्त्र , तथा वृहद देशी का अनुकरण करने की चेष्टा की है। परन्तु मतंग

काल के देशी रागों के स्थान पर 'अधुना प्रसिद्ध राग' ने स्थान ले लिया था। पं0 शारंगदेव के रत्नाकर में प्रगति तथा विकास के लक्षणों का पथप्रदर्शक के रूप में पाया जाता है। संगीत रत्नाकर में मूर्च्छनाओं की मध्य सप्तक में स्थापना, विकृत स्वरों की कल्पना, मध्यमग्राम का लोप और प्रति मध्यम की उत्पत्ति इत्यादि की मौलिकता को प्रकट करती है। इनके समय में भरत की जातियाँ नष्ट हो चुकी थीं, तथा मतंग के काल के देशी रागों के स्थान पर पं0 शारंगदेव थे रागों का सम्बन्ध पुराने रागों से तथा जातियों के जोड़ने का प्रयत्न किया है। परन्तु जातियों के एकदम लोप होने के कारण सम्भव नहीं हो सका।

हजरत अमीर खुसरोः

भारतीय संगीत में अमीर खुसरो का नाम आदर से लिया जाता था। इनका जन्म 1254 ई0 में उत्तर प्रदेश के पटियाली ग्राम में हुआ था। उन दिनों उत्तर भारत का मुस्लिम शासित प्रदेश भारतीय शास्त्रीय संगीत के विद्वानों से शून्य हो चुका था। अमीर खुसरो द्वारा संगीत के प्रति किये गये महान कार्यो की सराहना सभी विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से की है। खुसरो संगीत के प्रति युग प्रवर्तक महापुरुष थे।

खुसरो फारसी के एक अच्छे कवि थे, साथ ही साथ जलालुद्दीन अथवा अलाउद्दीन खिलजी के राज्यकाल में जो हिन्दू गायक आस पास दिखाई दिये उन्हीं से उन्हें संगीत का अल्प ज्ञान प्राप्त हुआ।

खुसरों योग्य, प्रतिभाशाली, राजशक्ति के साथ रहने वाला,कूटनीतिज्ञ और दरबारी व्यक्ति था। उन्होंने अपने जीवन में दिल्ली के ग्यारह वादशाहतें देखी थीं। उसने उस समय के सूफी सन्त निजामुद्दीन को जिनका प्रभाव प्रजा पर था गा, बजाकर अलाउद्दीन के पक्ष में कर लिया था। भारतीय संगीत से सम्बन्धित उसके व्यवहार को जानने के लिए इसका स्मरण आवश्यक है।

अमीर खुसरो के समकालीन गोपाल नायक को माना जाता है जो संगीत के अच्छे कलाकार थे। गोपाल द्वारा गाये गये रागों से खुसरो, अनभिज्ञ था। परन्तु गोपाल के गाये गये रागों को स्वयं का कहकर खुसरो की प्रतिभा में कूटनीतिज्ञता तथा हठवादिता के प्रमाण मिलते हैं। इस काल में 'मुसलमानों ने संगीत के शास्त्रीय पक्ष की अवहेलना करके केवल क्रियात्मक की तरफ ध्यान दिया। फलस्वरूप गीतों के अनेक रूप जैसे- कव्वाली एवं तराना का प्रचार हुआ।

यद्यपि खुसरो फारसी के विद्वान और कवि थे, परन्तु उन्होंने हिन्दी की खड़ी बोली में सर्वप्रथम कविता का निर्माण किया। खुसरो का कहना था कि भारतीय संगीत पूरे विश्व में श्रेष्ठ है। अमीर खुसरो की कृति 'किरानुस्सादैन' से प्रतीत होता है कि खुसरो का ईरानी संगीत का पूर्ण ज्ञान था। अमीर खुसरो द्वारा प्रचारित 'मुकाम पद्धति' महान कार्य था। भारतीय संगीत के प्रति उनके कार्यो को सदैव याद रखा जायेगा।

भारतवर्ष में सूफियों की सुहरवर्दी परम्परा के संस्थापक शेख बहाउद्दीन जमरिया मुल्तानी संगीत के महान आचार्य थे। ख्वाजा सैय्यद मोहम्मद इमाम तथा ख्वाजा सैय्यद मूसा संगीत के रहस्यों को जानते थे, तथा खुसरो के साथ मिलकर कव्वाली तथा नये नये रागों का निर्माण किया।

कहा जाता है कि वीणा से सहतार तथा मृदंग से तबला तथा नये-नये रागों का आविष्कार किया । सूफी संतों के अतिरिक्त तत्कालीन शासक भी संगीत के प्रति रुचि लेते थे। अच्छे, संगीतज्ञों को सम्मान देना तथा संगीत के उत्थान में प्रयत्नशील थे। अलाउद्दीन खिलजी के दरबार में भारत के विभिन्न क्षेत्रों से कलाकारों (गायन, वादन तथा नृत्य) को बुलाया जाता था। जिनमें मौलाना हमीदुद्दीन, मौलाना तलीफ अच्छे गायक थे। गोपाल गायक भी इसी काल में दिल्ली गये थे।

मध्यकाल में ही अन्य शासकों ने भी संगीत की सेवा की जिनमें राजा मानसिंह तोमर, सुल्तान हुसेन शर्की, इब्राहीम शाह के अतिरिक्त जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर आदि मुगल शासक हुए।

मुगलकाल (सन्1525 से 1740 ई0 तक)

इस काल में बाबर , हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब और बहादुरशाह जैसे अनेक बादशाह हुए जिनके काल में संगीत के अनेक ग्रन्थों की रचना हुई तथा पिरिवर्तन हुए।

बाबरः

बाबर स्वयं श्रेष्ठ संगीतज्ञ था। वह संगीतज्ञों का सम्मान करता था, श्रेष्ठ संगीतज्ञों को पुरष्कृत करता था। इसका काल (1525 से 1556 रहा) संगीत के अन्दर जो गिरावट आ रही थी वह इस काल में स्थिर हो गया। बाबर की दृष्टि में संगीत मनोरंजन की वस्तु थी। फलतः संगीत में श्रृंगारिकता प्रवेश करती चली गयी। उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन का जोर होता गया। बंगाल में चैतन्य महाप्रभु एवं अन्य भक्त लोग संकीर्तन का प्रचार कर रहे थे। साथ ही साथ कुछ संगीत विद्वान संगीत के शास्त्रीय पक्ष को सुदृढ़ करने का प्रयत्न करते रहे,जिसके कारण संगीत के ग्रन्थ तथा संगीत पर शोध होने लगा।

हुमायूँः

बाबर के बाद हुमायूँ गद्दी पर बैठे, उन दिनों भक्ति आन्दोलन के साथ साथ सूफी संतों ने मानव जीवन के शिक्षा एवं सुन्दर बातों को संगीत के माध्यम से जनता तक पहुँचाने में अनेक गेय पदों की रचना की।

फलस्वरूप संगीत में दो परिवर्तन हुए । एक संकीर्तन तथा भजनों के द्वारा संगीत जनता के समक्ष आ गया इसके पूर्व जो संगीत केवल मनोरंजन का साधन था वह लौकिक दृष्टि से ईश्वर उपासना का साधन हो गया।

इसी काल के लगभग, 1500 ई0 में जौनपुर के बादशाह सुल्तान हुसेन शर्की ने नये नये रागों की रचना की।

राग तरंगिणी:

इस संगीत ग्रन्थ के रचयिता लोचन पण्डित हैं। इनके रचनाकाल में एकमत नहीं हैं फिर भी लगभग पन्द्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध काल रहा होगा।

लोचन तरंगिणी में गीत के निषिद्ध तथा अनिवद्ध गान के साथ साथ एक सप्तक में बाइस श्रुतियाँ मानी है शारंगदेव के सातों स्वरों पर श्रुतियों को चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्ज मध्यम पंचमा में द्वे निषाद गान्धारौ त्रिस्त्रोऋषभ धैवतो को मानते हैं। स्वरों को उनकी अन्तिम कृतियों पर स्थापित किये।

राग तरंगिणी का शुद्ध थाट आधुनिक हिन्दुस्तानी पद्धति के काफी थाट के समान था। लोचन पंडित का शुद्ध गान्धार तथा शुद्ध निषाद हिन्दुस्तानी पद्धति के कोमल गान्धार तथा कोमल निषाद था।

लोचन पण्डित कुल बारह थाट मानते थे।[1] तथा जन्य रागों का वर्गीकरण भी इन्हीं से करते हैं-

1- भैरवी

2- तोडी

1- संगीत पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ-25

3- गौरी

4- कर्णाटि

5- केदार

6- ईमन

7- सारंग

8- मेघ

9- घनाग्री

10- पूर्वा

11- मुखाड़ी

12- दीपक

राग तरंगिणी के सभी जन्य राग हिन्दुस्तानी संगीतज्ञों को मालूम है। इसलिए यह ग्रन्थ सबसे अधिक ऐतिहासिक माना जाता है, इन जन्य रागों के स्वर यमन काल में अनेक स्वर परिवर्तित कर दिये गये। उनमें से कुछ आज भी ज्यों की त्यों है। तरंगिणी छन्द शास्त्र की प्रमुख पुस्तक है।

अकबर कालः (1560 से 1605)

अकबर बादशाह का काल (1560 से 1605 ई0) तक माना गया है। संगीत कला, तथा साहित्य के ज्ञाता तथा गुणियों का सम्मान करते थे। इनके दरबार में नौ रत्न थे जिनमें तानसेन का नाम प्रमुख गायकों में था। आइने अकबरी में छत्तीस संगीतज्ञों में केवल चार या पाँच नाम हिन्दू संगीतज्ञों का है । इस काल में तानसेन, बैजू, रामदास, मदन राय,बृज चन्द एवं श्रीचन्द नामक अनेक संगीतज्ञ थे। उसी काल में भक्त कवि शिरोमणि स्वामी हरिदास जैसे उच्च कोटि के संगीतज्ञ तथा भक्त कवियों में सूरदास, मीराबाई, तुलसीदास, कबीर और वल्लभ सम्प्रदाय के अनेक संगीत शिरोमणि भक्त उल्लेखनीय है।

अकबर का राज्यकाल संगीत का स्वर्णकाल माना जाता है। जहाॅ एक तरफ अकबर अच्छे शासक थे वहीं दूसरी तरफ प्रतिभाशाली संगीत अनुरागी तथा मुनियों को अत्यधिक सम्मान देते थे। इनके राज्यकाल में 'रागसागर' नामक ग्रन्थ की रचना हुई। भारतीय राग रागिनियों के प्रेमी शाक थे। अकबर के काल में अबुल फजल द्वारा लिखी गयी पुस्तक 'आइने अकबरी' में संगीत विषयक वर्णन है।[1]

तानसेनः

अकबर के दरबार में तानसे महान संगीतज्ञ हुए जिनका नाम आज भी लिया जाता है। इनका पूरा नाम तन्ना मिश्रा था और ये स्वामी हरिदास जी के शिष्य थे। सन् 1556 ई0 में ये अकबर के दरबारी गायक हो गये। इनके स्वरों में शक्ति थी तथा रागों को गाकर चमत्कार पैदा करने की क्षमता थी। जैसे- मेघमल्हार द्वारा पानी बरसाना दीपक राग द्वारा वायु मण्डल में अग्निमय होना। रागों द्वारा पशु पक्षी को मोहित करना आदि है।

इन्होंने कुछ रागों का आविष्कार किया जो आज भी प्रचलित है। जैसे- दरबारी कान्हड़ा, मियाॅ की सारंग,मिया की तोड़ी, मियां मल्हार आदि। इनके शिष्य समुक्षय दो भागों में बॅट गये- (1) रबाबिये तथा बीनकार। रबाबियों के प्रतिनिधि मुहम्मद अली खाॅ तथा वीन्कारों के प्रतिनिधि रामपुर के वजीर खाॅ माने जाते थे। इनके चार पुत्र और एक पुत्री थी। पुत्रों का नाम- सुरतसेन, तरंगसेन, शरतसेन तथा विलास खाॅ तथा पुत्री का नाम सरस्वती था। ये सभी अच्छे कलाकार थे।

स्वरमेल कलानिधि- रामामात्य- 1549-50

दक्षिणी संगीत विद्वान पं0 रामामात्य ने इस ग्रन्थ की रचना- 1549-50 ई0 में की। इसमें कुल पाॅच प्रकरण हैं। उपोदघात् प्रकरण- जो केवल पुस्तक की भूमिका मात्र है। स्वर प्रकरण- जिसमें गान्धर्व तथा गान के अन्तर्गत संगीत को विभाजित करके इन दोनों

शब्दों का स्पष्टीकरण है। स्वर प्रकरण में सात शुद्ध तथा सात विकृत स्वरों को माना है। वीणा प्रकरण - इसमें वीणा के दण्ड पर अपने चौदह स्वरों को स्थापित किया है। मेल प्रमरण- इसमें बीस ठाठों का शुद्ध तथा विकृत स्वरों सहित वर्णन है। राग प्रकरण- बीस ठाठों के अन्तर्गत तिरसठ जन्य रागों का उल्लेख है। संस्कृत ग्रन्थों के अध्ययन की दृष्टि से यह एक उत्तम ग्रन्थ है। जबकि प्रचलित हिन्दुस्तानी पद्धति में ठाठों तथा रागों के स्वरों में अन्तर है।

मानकुतूहलः

अकबर के सिंहासनारूढ़ होने से पूर्व (1486-1515ई0) गवालियर के राजा मानसिंह तोमर ने ध्रुकपद तथा धमार गायकी के तरीके को प्रारम्भ किया। राजा मानसिंह की आज्ञा से मानकुतूहल नामक ग्रन्थ संकलित की गयी।

पुण्डरीक विट्ठल के ग्रन्थः

इन्हेंने 1600 ई0 के लगभग संगीत सम्बन्धी ग्रन्थ- सद्रागचन्द्रोदय, रागमाला, राग मंजरी तथा नर्तक निर्णय लिखे। इनमें नर्तक निर्णय नृत्य कला से सम्बन्धित है और शेष तीन में रागादि का वर्णन है। इस ग्रन्थ में बाइस श्रुतियों पर स्वर स्थापना, वीणा के तार, मिलाने का नियम, तथा पदरों के स्थानों का वर्णन है। ये उन्नीस ठाठों के अन्तर्गत अट्ठावन रागों का वर्गीकरण करते हैं इसी प्रकार रागमाला के अन्तर्गत स्वर स्थान तो वही हैं जो चन्द्रोदय में हैं परन्तु उनके विकृत नाम इसमें नहीं दिये हैं। उसके स्थान पर एकगतिक कि 'द्विगतिकनि' 'त्रिगतिकनि' आदि का वर्णन है। प्रत्येक गति का माप एक श्रुति माना है। स्वर स्थान बताने के उपरांत वादी, सम्वादी, अनुशादी , विवादी ग्रह, अंश , न्यास की परिभाषा बताते हैं।

रागाध्याय में रागों के तीन वर्ग पुरुष राग, स्त्री राग और पुत्र राग कर दिये

हैं। इनमें छह पुरष राग, प्रत्येक की पॉच पॉच भागी राग तथा पॉच पॉच पुत्र रागों के नाम दिये हैं। पुण्डरीक ने कुछ हिन्दुस्तानी राग जो आज भी प्रचलित है जो फारस के हैं जैसे- हुसेनी, यमन, सटपरदा, जिलाज, उश्शाक इत्यादि हैं। उन्होंने अपना शुद्ध ठाठ दक्षिण के शुद्ध ठाठ को ही माना है।

<u>संगीत परिजातः</u>

यह ग्रन्थ सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में लिखा गया। अहोबल दक्षिण भारत के थे परन्तु उत्तर भारत में आकर संगीत पारिजात ग्रन्थ लिखा। इसमें कुछ ऐसे राग हैं जो दक्षिण भारत में प्रचलित हैं, परन्तु उत्तर भारत के संगीतज्ञ उनसे अनभिज्ञ हैं। पं0 अहोसल भी एक सप्तक में कुल 22 श्रुतियॉ मानते थे तथा उन्होंने स्वरों की स्थापना पूर्व लेखकों के अनुसार चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्ज मध्यम पंचमा, द्वै द्वै निषाद गान्धारों त्रिस्त्री ऋषभ धैवतो को आधार माना है। शुद्ध स्वरों को उनकी अन्तिम श्रुति पर माना है उनके शुद्ध स्वर आधुनिक काफी ठाठ के समान थे। वीणा के तार पर स्वर स्थापना हृदय प्रकाश की ही तरह दिया है, संगीत पारिजात में शुद्ध तथा विकृत स्वरों की आन्दोलन संख्या इस प्रकार से है- 'सा'-240, रे-270, 'ग'-288,'म'-320, 'प'-360, 'ध'-405, 'नि'-432, तार षड्ज-480, कोमल रीषभ- $254^{2}/17$, तीव्र गान्धार $301^{17}/43$, तीव्र मध्यम-$337^{1}/2$, कोमल धैवत- $381^{3}/7$, तीव्र निषाद $310^{17/43\times3/2}$ माना है। अहोवल ने अपने रागों का किन्हीं विशेष ठाठों में वर्गीकरण नहीं करता, परन्तु यदा कदा ठाठों के नाम दे देना ही इस बात का प्रमाण है कि उस समय रागों को ठाठों के अन्तर्गत रखा जाता था। संगीत पारिजात 122 रागों का वर्णन दिया है। राग वर्णन में प्रत्येक रागों में लगने वाले स्वर, आरोह, अवरोह, ग्रह, न्यास और मूर्च्छना का वर्णन है। 'पारिजात' की मूर्च्छना प्रत्येक राग के 'स्वर कर्ण' की प्रथम 'तान' मा। है। अहोबल ने वीणा के 36 की तार की लम्बाई पर स्वरों को स्थापित किया है जो इस प्रकार

है। षड्ज 36^4,ऋषभ-32^4, गान्धार-30^4, मध्यम-27^4, पंचम-24^4, धैवत-$21^1/2^4$ निषाद-20^4, तार षड्ज-18^4 माना है।

अहोबल ने शुद्ध तथा विकृत कुल मिलाकर उन्नीस स्वर बतलाये हैं। जिस स्वर से राग आरम्भ होता है उसे उद्साह कारक (तान) की संज्ञा दी है। अंश स्वर के रूप में षड्ज को स्वीकार किया है। थाट के लिए 'मेल' शब्द का प्रयोग किया है। अहोबल ने बाद्यों का भी वर्णन किया है। जैसे- राजधानी नामक वाद्य (वीणा) रषाष, सुरसिंगार, जलतरंग, सुनादी (शहनाई) चंग,तम्बूर तथा पटह वाद्य को ढोलक के नाम से उल्लेख किया है।[1] पं0 अहोबल द्वारा वीणा के तार पर स्वरों की स्थापना संगीत जगत के लिए महान उपलब्धि माना जाता है।

<u>राग तत्व विबोधः</u>

पं0 निवास द्वारा लिखित यह छोटा परन्तु रोचक ग्रन्थ है। इनके समय के बारे में स्पष्ट संकेत नहीं मिलते फिर भी यह कहा जा सकता है कि पं0 अहोबल के संगीत पारिजात के पश्चात यह ग्रन्थ लिखा गया। राग तत्व विबोध के अधिकांश भाग संगीत पारिजात के ही हैं। अहोबल की स्थापना अहोबल की भाँति वीणा के तार की सहायता से की है। श्री निवास अपने शुद्ध रिषभ को निर्ममता से पृथक रखता है। वह कहता है-

षड्जपंचम9 सूत्रमंशत्र यमन्वितम्

तत्रांशद्वय संत्यागीत्पूर्वभागे तुरिर्भवित्।

इस प्रकार 36 का तार मान लेनेपर हमें मेरू से 4^4 की और थोड़ी से 32^4

1- मुलसमान और भारतीय संगीत- पृ0 44

की दूरी पर शुद्ध रीषभ प्राप्त होता है इस प्रकार अहोवल की भाँति वीणा के तार की लम्बाई पर स्वरों को स्थापित किया है।

इन्होंने अपने ग्रन्थ में कोई तिथि नहीं दी है परन्तु सर्वमान्य है कि संगीत पारिजात के बाद और भाव भट्ट के मध्य का होना चाहिए जो लगभग 18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का होना चाहिए।

श्री निवास द्वारा मेल अथवा ठाठ की और उकने उपविभाग की परिभाषा निम्नांकित श्लोकों में करता है।

मेलः स्वरसमूहः स्याद्राग व्यंजन भक्तिमान।

शिलष्टोच्चारणमेवात्र समुदायः प्रकीर्तितः।।[1]

अर्थात- मेल उस स्वर समूह को कहते हैं जिसमें राग उत्पन्न करने की शक्ति हो। मेल के तीन रूप होते हैं। जब एक मेल में समस्त शुद्ध स्वर आ जाये तो सम्पूर्ण, छह स्वर हो तो षाढ़व तथा पाँच स्वर हो तो ओदव कहा जाता है। प्रत्येक सम्पूर्ण मेल में ओढ़व- षाढव- सम्पूर्ण के सिद्धान्त के आधार आरोहावरोह का प्रयोग करने पर 484 रागों की उत्पत्ति होती है। वास्तव में इसी सिद्धान्त पर कर्नाटक संगीत का राग सिद्धान्त आधारित है। राग की उत्पत्ति के निमित्त मूर्च्छना का होना भी अति आवश्यक है। श्री निवास के समय में रागों को गाने का नियम था।

प्रत्येक राग में चार भाग होते थे, जिन्हें 'उर्दग्राह स्थायी', संचारी और मुक्तयी कहते थे। उद्ग्राह वह प्रथम भाग था जिससे राग का आलाप प्रारम्भ होता था। तत्पश्चात स्थायी, संचारी मुक्तयी आते थे। राग को क्रियात्मकता प्रदान करने के लिए मूर्च्छना रागालाप का प्रथम अंग मात्र था।

1- भारतीय संगीत पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन, पृ0 46

श्री निवास ने स्वरों से मेल बनाते समय बारह मुख्य श्रुतियों से अधिक को कभी स्थान नहीं दिया। किसी विशेष रूप में उसने अन्य श्रुतियों को कभी महान स्वर की भाँति या सौन्दर्यवर्धक स्वरों के रूप में भले ही प्रार्थना कर लिया हो।

जहाँगीर काल (1605 से 1627 ई0 तक)

जहाँगीर अपने पिता अकबर बादशाह की तरह संगीत प्रेमी थे और संगीत के मर्मज्ञ भी। उन्हें सितार सुनने का बहुत शौक था तथां श्रृंगारिक चीजें पसन्द थीं। उनके दरबार में एक से एक अच्छे गायक तथा नर्तकियाँ थीं उनकी प्रिय रानी नूरजहाँ कविता लिखती थीं तथा स्वयं गाना गाती थीं।

इसी काल में पं0 सोमनाथ का संगीत ग्रन्थ 'राग तत्व विवोध' लिया गया तथा पं0 दामोदर द्वारा 'संगीत दर्पण' लिखा गया था।

जहाँगीर अपने काल में संगीत के क्षेत्र में अकबर की परम्परा को आगे बढ़ाया। इनके दरबार में हिन्दू मुसलमान दोनों ही गायक बादक थे।

जहाँगीर के दरबार में तानसेन पुत्र विलास खाँ छत्तर खाँ, खुर्दम चाँद,मक्खू तथा हमजान जैसे प्रसिद्ध गायक थे। परन्तु इन सभी कलाकारों में विलास खाँ प्रसिद्ध गायक हुए।

शाहजहाँ काल (1627 से 1658 ई तक)

शाहजहाँ भी जहाँगीर के समान संगीत प्रेमी थे इनके काल में जहाँगीर से ज्यादा संगीत का विकास हुआ। 'दि स्टडी आफ इण्डिया म्यूजिक' के लेखक कैप्टन ओस्तवाल अपनी पुस्तक पृष्ठ-104 में लिखा है कि शाहजहाँ अच्छे गायक थे। इनके दरबार में अच्छे अच्छे गायक , वादक थे अपने दरबार के गायक लाल खाँ तथा देर खाँ के गायन से मुग्ध होकर 4500 चाँदी के सिक्कों से तुलवाया तथा 'गुण समुद्र' की उपाधि

से विभूषित किया। शाहजहाॅ काल में ध्रुवपद शैली का अत्यधिक प्रचार था। संगीत का सम्बन्ध उच्च वर्गीय ब्राह्मण में था। परन्तु संगीत ने धीरे- धीरे व्यवसाय का यप धारण कर लिया जिससे संगीत का कला रूप दूषित होने लगा। परिणाम स्वरूप संगीत शिक्षित वर्ग से हटकर अशिक्षित वर्ग में जाने लगा। इसमें उत्तर तथा दक्षिण भारत के भेदों को और स्पष्अ कर दिया। दक्षिण भारत में उच्च ब्राह्मण और देवालयों में संगीत का शुद्ध रूप विकसित था। प्रसिद्ध अरबी विद्वान- सुलेमान जिकेरा ने अपनी पुस्तक 'हिन्द का राजनैतिक इतिहास' में लिखे हैं कि शाहजहाॅ काल में संगीत का खूब प्रचार हुआ, परन्तु उच्च वर्ग से हटकर अशिक्षि वर्ग में तथा निम्न वर्ग में संगीत चला गया। जिसके कारण वे लोग केवल गले की मधुरता का ही ध्यान रखते थे। शास्त्रीय तथा कलात्मक पक्ष धूमिल होने लगा। इस काल में संगीत गणिकाओं के हाथ में चला गया। संगीत का नैतिक स्तर गिर चुका था, कलाकार दरबार में शराब पीकर गाते बजाते थे। इसका प्रभाव कवियों पर भी पड़ा जिससे सूर, मीरा, कबीर तथा नानक जी की परम्परा तथा सीख को छोड़कर केशव और बिहारी जैसे कवियों ने श्रृंगारिक कविता, दोहों को लिखा। मुगलकाल में ध्रुवपद में बदलाव आने लगा।

संगीतज्ञः

दिरंग खाॅः

ध्रुवपद के जाने माने श्रेष्ठ कलाकार थे। जिन्हें शाहजहाॅ के दरबार में मान सम्मान प्राप्त था।

खुशहाल खाॅः

ये तानसेन के पुत्र विलास खाॅ के दौहित्र थे। इनके गायन से शाहजहाॅ रसविभोर हो जाता था।

लाल खॉं:

ये विलास खॉं के दामाद थे जिनके गायन से मुग्ध होकर 'गुण समुद्र' उपाधि प्रदान की।

अहोबल:

अहोबल ने इसी काल के लगभग 1650 ई0 में संगीत पारिजात लिखा था जो उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत का प्रमुख संगीत ग्रन्था माना जाता है।

हृदय नारायण देव:

जिनका काल सत्रहवीं शताब्दी था। जिन्होंने 'हृदय कौतुक' तथा 'हृदय प्रकाश' संगीत ग्रन्थ लिखी। इनके ग्रन्थ संगीत पारिजात के आधार पर था।

औरंगजेब काल (1658 से 1707 ई0 तक)

शाहजहॉं के बाद औरंगजेब के शासन काल में संगीत के प्रति उत्सुकता समाप्त हो रही थी। क्योंकि उसने संगीत में अय्याशी पक्ष को ही देखा। अगर उसे संगीत के आध्यात्मक पक्ष ईश्वरोपासना का साक्षात् होता तो उसका झुकाव संगीत के तरफ होता। इसलिए वह संगीत को घृणा की दृष्टि से देखता था।

डॉ0 कर्नल टाइड अपनी पुस्तक - "यूनिवर्सल म्यूजिक डायरी" में लिखा है कि यदि औरंगजेब भारतीय संगीत के यथार्थ पहलू को समझ जाता तो वह संगीत के प्रति अच्छा कदम उठाता। उसे कभी धार्मिक संगीत सुनने का अवसर ही नहीं मिला। वह अपने जनता को चरित्रवान बनाना चाहता था औरगजेब ने अपने दरबार में संगीत पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। फिर भी वह गुणी संगीतज्ञों को पुरस्कृत करता था।

औरंगजेब के गद्दी पर बैठने के पश्चात् 1665 में मिर्जा रोशन जमीर ने संगीत पारिजात का फारसी में अनुवाद किया। सत्य यह है कि राजमहलों में बेगमों के मनोरंजन

हेतु गायिकाओं की नियुक्ति स्वयं करता था। औरंगजेब को समर्पित करने के लिए फकीर उल्लाह ने `मानकुतुहल ग्रनी का अनुवाद 'रागदर्पण' लिखा। औरंगजेब ने ही कृपा नामक पखावजी को 'मृदंग राय' की उपाधि दी थी। हयात सरस नैन तथा सुखी सेन आदि कलाकारों को औरंगजेब के दरबार में नित्य जाते थे दरबार के बाहर अनेक संगीतज्ञों ने अपनी क्षमता के अनुसार संगीत को समृद्ध किये और साधनारत् थे।

भाव भट्ट कृत- 'अनूप अंकुश' 'अनूप विलास' एवं 'अनूप संगीत रत्नाकर'

औरंगजेब के काल में भाव भट्ट द्वारा तीन संगीत ग्रन्थों की रचना हुई। भाव भट्ट बीकानेर महाराज अनूप सिंह के आश्रय में रहते थे। ये उच्च ब्राह्मण थे। इन्हें बीकानेर नरेश द्वारा आनुष्टुप चक्रवर्ती की उपाधि से विभूषित किया गया था। ये संस्कृत एवं संगीत के प्रकाण्ड विद्वान थे। अनूप 'विलास' में - स्वर, ग्राम,मूर्च्छना, तानों के प्रकार , जाति, अलंकार आदि की परिभाषा दी गयी है।

"अनूप अंकुश" में श्रुति, राग वर्गीकरण आदि का वर्णन है।

"अनूप संगीत रत्नाकर" में- श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, तान, वर्ण, अलंकार आदि की परिभाषा शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर के अनुसार की गयी है। इसके अतिरिक्त नट रागों के प्रकारों का वर्णन है। तथा ध्रुव पदों का अच्छा संकलन भी है। इन ग्रन्थों के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि इनमें वर्णित सभी सामग्री पूर्व के ग्रन्थकारों का ही है, परन्तु नट के प्रकार तथा ध्रुवपदों का संकलन नवीन कार्य है।

पं0 व्यंकट मखी कृत- 'चर्तुदण्ड प्रकाशिका"

औरंगजेब के शासन काल के आरम्भ में तन्जौर के नरेश विजय राघव के अनुरोध पर पंडित व्यंकट मखी ने 'चर्तद्दण्ड प्रकाशिका' नासक ग्रन्थ की रचना की थी।

व्यंकट मखी चतुर्थ दण्डी सम्प्रदाय के थे और इन्होंने गोपाल नायक को भी इसी सम्प्रदाय का प्रवर्तक कहा है। चर्तुदण्डी सम्प्रदाय के चारों दण्डों की कल्पना विशुद्ध भारतीय रही है। इस ग्रन्थ की मुख्य विशेषता यह है कि गणितानुसार एक सप्तक के बारह स्वरों के आधार पर 72 मेलों की रचना की है जिसमें दक्षिण के स्वरों को आधार माना है। साथ ही साथ एक मेल से जातियों के आधार पर 484 रागों की उत्पत्ति का सुन्दर वर्णन है।[1] व्यंकट मखी के अनुसार शारंगदेव वर्णित राग उनके युग में प्रचार में नहीं थे इसी कारण व्यंकटमखी ने राग के सम्बन्ध में अपने गुरू 'तानप्पा' का पूर्णरूपेण अनुसरण किया है। कल्याह थाठ का वर्णन इस बात को सिद्ध करता है कि तानप्पा का सम्प्रदाय उत्तर भारत को अधिक प्रभावित था।

व्यंकटमखी ने अपने सम्पूर्ण रागों में आठ, षादव रागों में सात और ओढ़व रागों में छः सवर माने हैं जबकि सम्पूर्ण ,षाढ़व और ओढ़व रागों में क्रमशः 7, 6, 5 सर्वमान्य है। इनके द्वारा तार सप्तक के 'सा' का प्रयोग उनके अष्टक वाद होने का परिचय है।[2] व्यंकटमखी के शुद्ध स्वर भरत तथा शारंगदेव से भिन्न है। व्यंकटमखी ने भी 22 ही स्वीकार की है परन्तु 'गुण्ड क्रिया राग 'में 24 श्रुतियाॅ मानी हैं। व्यंकटमखी ने एक वीणा का भी आविष्कार किया था जिसका नाम "व्यंकटाध्वरी वीणा" रखा था। इसके अतिरिक्त शुद्ध मेला और मध्य मेला नाम वीणाओं के तार मिलाने की विधि का वर्णन की है।[3] इस प्रकार पं0 व्यंकटमखी ने अपने समय के संगीत का पूर्ण परिचय चतुर्दण्ड प्रकाशिका में किया है । बारह स्वरों से बहत्तर मेलों का निर्माण तथा एक

1- खुसरो तानसेन तथा अन्य कलाकार, पृ0 98
2- मुसलमान और भारतीय संगीत- पृ0 33 व 53
3- तदैव- पृ0 53-54
संग्रह चूड़ामणि भूमिका- पृ0 11-12

मेल से 484 रागों की उत्पत्ति का प्रयोग संगीत जगत की एक महान उपलब्धि मानी गयी है।

बहादुर शाह (प्रथम) 1707 से 1712 ई0 तक

औरंगजेब के बाद उनके पुत्र बहादुरशाह प्रथम 1707 ई0 में गद्दी पर बैठे। इनके काल में औरंगजेब द्वारा संगीत पर प्रतिबंध हट गया। ये संगीत प्रेमी थे। इनके प्रसंशा में भी अनेक ध्रुवपद प्राप्त होते हैं। 'रागमाला' नामक ध्रुवपद संग्रह में इनके नाम की भी ध्रुवपद हैं। नेमत खाँ 'सदारंग' की शिक्षा दीक्षा बहादुर शाह (प्रथम) के दरबार में हुई।

श्रीकण्ठ कृत- रसकौमुदीः

ये नद्यानगर (काठियावड़) के निवासी थे। लोगों को आश्चर्य है कि ये मूलतः उत्तर भारत के निवासी होकर दक्षिण भारत के संगीत पर उत्तम ग्रन्थ लिखे, क्योंकि उत्तर भारत के अधिकांश संगीतज्ञ दक्षिण भारत के संगीत को समझने का प्रयास नहीं करते थे। अतः उन्हें आश्चर्य होना स्वाभाविक है। अपने संस्कृति भाषा में संगीत पद्धति पर "रसकौमुदी" ग्रन्थ की रचना की। इसके प्रथम भाग में संगीत तथा दूसरे भाग में साहित्य को लिया है। ये नयानन्द के जाम साहेब की नौकरी में थे यह नगर द्वारिका के समीप है। इसमें दो खण्ड हैं- संगीत खण्ड , दूसरा साहित्य खण्ड है। इन्होंने सारी बातें पूर्व ग्रन्थकारों की भाँति ही लिया है लेकिन अपने विवेकानुसार रखा है जैसे श्रुतिवर्णन 'नारदीय शिक्षा' की ही विस्तृत व्याख्या है। श्री कण्ठ ने सात शुद्ध तथा सात विकृति स्वर माने हैं। इन्होंने केवल षड्ज ग्राम ही माना है। दक्षिण की भाँति शुद्ध ठाठ मुखारी को माना है।

मुहम्मद शाह 'रंगीले'- 1719 से 1748 ई तकः

मुगल बादशाह मुहम्मद शाह को संगीत से अधिक प्रेम था। संगीत जगत में

'रंगीले' के नाम से सुविख्यात हुए। इनके दरबार में प्रसिद्ध संगीतज्ञ सदारंग तथा अदारंग के अतिरिक्त ताज खॉ, गुलाम रसूल,जट्टा, अलावन्दे, मुईनुद्दीन दुरहानी, रहीमसेन, संवाद खॉ आदि तत्कालीन अच्छे संगीतज्ञ थे। सदारंग तथा अदारंग ध्रुवपदिये थे परन्तु इन लोगों ने अनेक ख्यालों की रचना की। जिसमें मुहम्मद शाह नाम अधिकांश रचनाओं में दी है,जो इनके अपने बादशाह के प्रति प्रेम का प्रतीक माना गया। इस प्रकार की रचनायें आज भी प्रचलित हैं। इनके दरबार में सुल्तान हुसैन शर्की की ख्याज पद्धति का भी पुनरुत्थान हुआ। रंगोली के समय में अच्छे वादक भी थे। इनके उन्नीस वर्षीय राज्यकाल में संगीत का विशेष उत्थान हुआ। ख्याल के साथ साथ इनके काल में टप्पा तथा ठुमरी गायन शैलियों की नींव भी पड़ी जो कालान्तर में शास्त्रीय तथा उप शास्त्रीय गायन का प्रमुख अंग हो गया। श्रृंगारिक रचनाओं को दरबार से लेकर जन साधारण तक अच्छा स्थान मिलने लगा। मुहम्मद शाह के काल में हिन्दी और फारसी शैलियों का आध्यात्मिक सम्मिश्रण हुआ। शास्त्रीय संगीत के कुछ प्रकारों का नाम फारसी में रहे तथा कुछ नये प्रकार भी आये जैसे- ताराना, तिखट, कव्वाली, गुलनक्स कलबाना आदि।

कैप्टन विलयर्ड ने अपने पुस्तक 'ट्रीस्टाइल आन दि म्यूजिक आफ इण्डिया' में लिखा है कि उस काल में सदारंग , नूर खॉ, प्यार खॉ,गुलाम रसूल खॉ, शंकर मंख, ठेठू, मीठू, मुहम्मद खॉ, बज्ज खॉ और टप्पा गायन शैली के प्रवर्तक शोरी (गुलाम नवी) अधिक महत्वपूर्ण थे। त्योहारों पर दरबार में तथा सार्वजनिक स्थानों पर नृत्यों का प्रदर्शन होता था। इसी युग में शास्त्रीय संगीत आम जनता से कटना शुरू हो गया। संगीत शिक्षित वर्ग से हटकर ऐसे वर्ग में पहुँच रहा था जो संगीत शास्त्र से अनभिज्ञ थे। सदारंग के पुत्र भूपत खॉ 'मनरंग' नाम से ख्यालों की रचना की।

हसन खाँ ढाढी:

सदारंग के प्रिय एवं योग्य शिष्य थे उस समय के सबसे श्रेष्ठ वीणा वादक थे आज के अधिकांश वीणावादक अपने को हसन खाँ ढाढी के घराने के मानते हैं।

मुहम्मद शाह रंगीले के बाद अहमद शाह 1748 से 1757 ई0 गद्दी पर बैठे फिर आलमगीर सामी 1754 से 1 59 ई0 तक जिनके प्रशंसा में अदारंग ने कुछ ध्रुवपदों की रचना की।

शाह आलम (द्वितीय)- 1759 से 1806 ई0 तक

शाह आलम स्वयं भी अच्छे गायक थे। इन्होंने गायन् की शिक्षा उस्ताद नजर अली से प्राप्त की थी। शाह आलम ने अनेकों होरियों (गीत प्रकार) की रचना की तथा 'नादिरातिशाही' नामक संगीत ग्रन्थ की रचना की जिसमें तत्कालीन गीतों की रचना का संकलन है। इस पुस्तक में सर्वप्रथम सितार नामक वाद्य का नाम भी है। शास्त्रकारों का कथन है कि "खुलासतुल- ऐश- आलमशाही" नामक पुस्तक की रचना शाह आलम के अनुरोध पर हुई थी। इस ग्रन्थ मे पुराने कलाकारों की चर्चा की गयी है। इस काल में ठुमरी तथा टप्पा का प्रचलन जनता में हो गया। जनता ने श्रृंगारिक, प्रेम विरह से परिपूर्ण गीत शैलियों को काफी पसन्द किया। वीणा का प्रचलन कम होने लगा ध्रुवपद गायकी ख्याल गायन के लिए स्थान छोड़ रही थी उस समय अवध की राजधानी अयोध्या था जिसके शासक शआदत खाँ था। उत्तरी संगीत के दो प्रमुख केन्द्र हो गये थे। (1) अयोध्या (2) लखनऊ।[1]

जयपुर के नरेश महाराजा प्रताप सिंह ने (177 से 1804) उसी समय में भारतीय संगीत को एक मार्ग देने के लिए भारत के संगीत विद्वानों का सम्मेलन आयोजित किया

1- ध्रुवपद और उसका विकास , पृ0 177

सभी संगीतकारों के मत से संगीतसार नामक ग्रन्थ की रचना की गयी।

महाराष्ट्र में उसी समय में 'लावनी' गीत शैली का जन्म हुआ जो धीरे-धीरे समस्त भारत वर्ष में फैल गया, लावनी में धार्मिक, सामाजिक और श्रृंगार वात्सल्य, प्रेम-विरह आदि गीत गाये जाते हैं।

मिर्जाखानः

मिर्जाखान आलमशाह के आश्रित उच्चकोटि के विद्वान थे, वे अच्छे गायक और शास्त्रज्ञ हुए। उन्होंने उर्दू में एक 'तोमेतुलहिन्द' नामक पुस्तक की रचना की थी। यह ग्रन्थ 19वीं शताब्दी के पूर्व का माना जाता है। क्योंकि उर्दू का प्रसिद्ध ग्रन्थ "नगमात आसफी की रचना 1815 ई0 में मुहम्मद रजा द्वारा हुई थी इस ग्रन्थ में तोमोतल हिन्द का उल्लेख तथा उसकी अच्द चर्चा, पायी जाती है इससे मिर्जाखान के काल की पुष्टि होती है। इस ग्रन्थ में संगीत दर्पण तथा रागार्णव ग्रन्थों का आधार दिया है। मिर्जाखान उच्च कोटि के विद्वान थे। ग्रन्थ में इस बात को सिद्ध किया गया है कि शुद्ध स्वर सप्तक राग विलावल ही है।

आदित्य रामजीः

आपका जन्म काल 1760 ई0 में हुआ था आपने लखनऊ के गायक खान साहब नन्हू मियाँ से ख्याल गायन की शिक्षा प्राप्त की थी।

आदित्यराम जी उच्च कोटि के गायक संस्कृत विद्वान थे। साथ ही साथ अच्दे मृदंग वादक भी थे। उन्होंने अनेक ध्रुवपद तथा धमारो की रचना की, जिसमें अपने नाम के साथ गुरू का भी नाम डाला है। इनकी रचनाओं का संग्रह 'आदित्यसार' को नाम से प्रकाश में आया। आदित्य राम जी 32 वर्षो तक जामनगर रियासत के दरबारी गायक रहे।

गुलाम रसूलः

आप ध्रुवपद के अच्छे गायक होने के साथ साथ ख्याल गायन में निपुण थे। गुलाम रसूल नबाब आसुफुद्दौला (सन् 1775 से 1795 ई0) के दरबारी गायक थे। गुलाम रसूल ख्यालों की बन्दिश तैयार करके घराने की बन्दिशों में डालकर समाज में प्रसारित करते थे। आपके पुत्र गुलाम नवी अच्छे गायक थे जिन्होंने 'शोरी' नाम से टप्पा गायन शैली को प्रचार में लाया।

त्यागराजः

इनका जन्म आंध्र प्रदेश के ब्राह्मण कुल में 1767ई0 में हुआ। इनके पिता किसी कारण से आन्ध्र छोड़कर तामिल प्रान्त में बस गये। इन्होंने संगीत तथा संस्कृत का अच्छा अध्ययन किया। इन्हें शिक्षा के समय बाल्मीकि रामायण में अटूट श्रृद्धा हो गया था इसी से उनके हृदय में राम चेतना हो गया। आप प्रतिदिन 2500 राम का जप करते थे। इन्होंने भक्ति भाव पूर्ण बहुत से गेय पदों की रचना कर राग तथा ताल में बाँधकर प्रचारित किया। ये कर्नाटक संगीत के सुधारक थे। इन्होंने कर्नाटक संगीत में अनेकों रागों का निर्माण किया। आज भी वहाँ के गायक इनके पदों को गाते हैं।

इन्हें गुरू के आर्शीवाद से 'स्वराणवि' नामक संगीत का एक दिव्य ग्रन्थ प्राप्त हुआ। इस ग्रन्थ में त्यागराज के अनेकों रचनायें हैं। इनके रचित 500 रचनायें इस समय प्राप्त हैं।

मिर्जा शोरीः

इन्हांने संगीत की शिक्षा अपने पिता गुलाम रसूल से प्राप्त की थी। इनका वास्तविक नाम गुलाम नवी था, ये लखनऊ के निवासी थे और आसफुद्दौला (सन् 1775 से 1795 ई0) के समकालीन थे। चूँकि इनकी आवाज पतली थी अतः इन्हें ख्याल के

तानबाजी तथा आलाप में रुचि नहीं हुई अपने आवाज के अनुरूप इन्हें गायन शैली की आवश्यकता थी, इसलिए ये पंजाब चले गये। वहाँ ऊँट पर बैठकर किसानों तथा व्यापारियों की धुनें इन्हें बहुत प्रभावित किया। उन धुनों को सुधार करके इन्होंने 'टप्पा' गायन शैली को जन्म दिया। पंजाबी भाषा इन्होंने पंजाब में सीख लिया था। रागों का इन्हें अच्छा ज्ञान था फिर भिन्न भिन्न रागों में टप्पा की रचना की टप्पा की रचना में इन्हें शास्त्रीय गायन का ज्ञान सहायता पहुँचाई।

शोरी मिर्जा स्वभाव के नम्र तथा साधु प्रकृति के व्यक्ति थे, इन्हें धन का बिल्कुल लोभ नहीं था। गायन के द्वारा जो कुछ कमाते थे, उसे साधुओं तथा फकीरों में बाँट देते थे। इन्हें कोई सन्तान नहीं था। इनके परम भक्त शिष्यों में ग्रम्मू नामक प्रतिभाशाली शिष्य अवश्य था जो इनके गायन शैली को आगे बढाया। आज बनारस तथा ग्वालियर के गायन टप्पा गाते हैं। शम्भू नाम का इनका परम भक्त शिष्य बनारस में बस गया।

गुलाम सालार जग:

ये सुजाउद्दौला के साले थे। इन्हें ध्रुवपद, धमार तथा ख्याल गायन में महारत हासिल थी। इनके गायन में मगक तथा आकार की तानों की विशेषता थी।

नवाब कासिम अली खाँ:

ये सालारजंग के पुत्र थे, अपने पिता के ही तरह, अच्छे गायक थे, शाहआलम द्वितीय केक काल में अनेकों उत्तम हिन्दू मुसलमान संगीतज्ञ थे। जिन्होंने भिन्न भिन्न घरानों और गायन शैलियों की शिक्षा देते थे। परन्तु इतिहास के विस्तृत रूपरेखा अप्राप्य होने के कारण उनके विषय में जानकारी उपलब्ध नहीं है।

अकबर द्वितीय - 1886 से 1837 ई0 तक

अकबर द्वितीय अंग्रेजों का वजीफा भोक्ता शासक था। प्लासी के युद्ध के बाद भारत के शासकों की यही स्थित रही। कला, संगीत तथा साहित्य की उन्नति होना अवश्यंभावी हो गया था। शासक लोग आपस में युद्ध करते थे। सभी का भविष्य सुनिश्चित नहीं था। ज्यादातर शासक विलासी हो गये थे । संगीत मनोरंजन का साधन मात्र रह गया था। गायन, वादन तथा नृत्य तीनों निम्न कोटि के मनोरंजन का साधन हो गया। ख्याल, टप्पा, ठुमरी तथा लावनी आदि गीत सभी श्रृंगारिक भावना से प्रेरित थे। कत्थक नृत्य भी विलासिता का साधन रह गया। देश गुलामी की तरफ बढ़ रहा था। कलाओं द्वारा जनमानस के उन्नति का मार्ग भी अवरुद्ध सा हो गया। फिर भी छिटपुट संगीतज्ञ अपनी धरोहर को बचाने में लगे थे जो उन्हें विरासत में प्राप्त था। संगीत में श्रृंगारिकता बढ़ गयी थी तथा रसों का अभाव हो रहा था। संगीतज्ञ रियासतों में रहकर जीविकोपार्जन करते रहे। उसी काल में अवध के नवाब 'सआदत अली खाँ' थे इनके काल में मोहम्मद अली अच्छे गायक थे।

कृष्णवर्धन बनर्जी:

ये संगीत के अच्छे शास्त्रज्ञ थे इनका समय 19वीं सदी के प्रारम्भ का था। इस समय बंगाल संगीत के विकास का मुख्य केन्द्र था। इन्होंने संगीत विषय पर 'गीतसूत्र' नामक ग्रन्थ की रचना की। इससे अनेक ध्रुवपद तथा ख्याल को इन्होंने स्वरलिपिबद्ध किये। इस पुस्तक में ग्राम राग, मूर्च्छना का विवेचन किया है।

मोहम्मद रजा:

इन्होंने 'नगमाते आसफी' नामक ग्रन्थ लिखा जिसकी रचना काल 1813ई0 माना जाता है। इन्होंने शुद्ध सप्तक विलावल माना है।

भारतीय संगीत पर मुगलकाल के संगीत का प्रभाव:

भारतीय संगीत पर मुगलकाल में संगीत में बदलाव आया जिसका कारण उनके साथ आये ईरानी संगीत ही था। प्राचीन रागों के रूपरेखा तथा साहित्य, कला संगीत पर ईरानी कलाकारों द्वारा प्रस्तुत राम रागनियों पर पड़ा। अधिकांश कलाकार फारसी भाषा के विद्वान थे। इसलिए उन्हें संस्कृत का ज्ञान नहीं था, फिर भी अमीर खुसरो तथा अकबर बादशाह के काल में संगीत की नई नई खोज हुई और अच्छे उच्चकोटि के कलाकार भी हुए।

इसी काल में संगीत शास्त्र में अनेकों ग्रन्थों की रचना हुई जैसे- शारंगदेव देवकृत संगीत रत्नाकर , अमीर खुसरो द्वारा 'किरानुस्सादैन' तथा मुकाम पद्धति' को प्रचारित किया तथा तराना, कव्वाली, गायन शैली तथा वीणा के आधार पर 'सहतार (सितार) तथा मृदंग के आधार पर तबला वाद्य का निर्माण किया।

मुगलकाल में ही भक्त कवियों में, सूरदास, मीरा, कबीर, गुरू नानक जी द्वारा संगीत, कला भगवत प्राप्ति का साधन बनकर उच्चतम शिखर पर पहुँच गया।

इसी काल के अन्तर्गत संगीत के अनेक ग्रन्थों की रचना हुई जैसे पं0 अहोबल कृत संगीत पारिजात, पं0 श्रीनिवास द्वारा 'राग तत्व विवोध" श्री कंठ द्वारा 'रस कौमुदी' पं0 भाव भट्ट द्वारा 'अनूप संगीत विलास, अनपरत्नाकर अनुपांकृश' रामामात्य द्वारा स्वर मेल कला विधि' पं0 सोमनाथ कृत 'राग विवोध' तथा पं0 व्यंकठमखी कृत चतुर्दाण्डिप्रकारीका' आदि है। इसी काल के अन्तर्गत सुविख्यात संगीतज्ञ जैसे- स्वामी हरिदास, तानसेन,बैजू बावरा आदि प्रमुख हैं।

मुसलमानों के साथ आये ईरानी फारसी के संगीत के तत्व शैलियाँ भारतीय संगीत में धीरे धीरे प्रवेश करते हुए उसके रूप में क्रमशः परिवर्तन करते रहे। मुस्लिम आगमन

के समय विशेषकर मुगलकाल के प्रारम्भ से कुछ ही पूर्व प्रबंध गायन समाप्त हुआ था और ध्रुवपद शैली प्रचार में आ रही थी। मुस्लिम राजाश्रय (मुगलशासन) में ध्रुवपद गायन शैली का अच्छा विकास हुआ। ध्रुवपद गायन का जन्म होरी गायन से हुआ था। और इसमें प्रबंध गायन के कुछ तत्वों का मिश्रण करके शास्त्रीय संगीत के गायन शैली का रूप दिया गया था। मुस्लिम काल में या मुगल काल में ध्रुवपद गायन के अनेक श्रेष्ठ गायक हुए हैं। मुस्लिम प्रभाव के कारण इसको अधिकांशतया श्रृंगारक होती थी, फिर भी अनेक ध्रुवपद ईश्वरोपासना से सम्बन्धित भी पाये जाते हैं।

विशेषतया मुगलकाल में ही ध्रुवपद शैली की गिरावट प्रारम्भ हुई और गायन की ख्याल शैली अपना स्थान बनाने लगी। मुगलकाल के पूर्व तथा मुगलकाल के प्रारम्भ में ख्याल गायन साथ सभ्य समाज में नहीं गाया जाता था। आगे चलकर अपारंग- सपारंग ऐसे गायकों ने विभिन्न प्रकार के ख्यालों की रचना करके, उसे प्रचार में लाये। मुगल काल के अन्तिम चरण के प्रारम्भ में ख्याल गायन अधिकाधिक प्रचलित हो गया, तथा उसमें अनेक रचनायें हुई।

टप्पा गायन शैली का जन्म भी मुगलकाल में ही हुआ। इसके गीत और शैली पर मुस्लिम प्रभाव भरपूर थे। टप्पे का गायन ध्रुवपद और ख्याल की अपेक्षा संक्षिप्त भी है। इसमें श्रंगारिक (प्रेम वियोग) रचनाओं का ही बाहुल्य है।

मुगलकाल के श्रृंगारिक वातावरण में ठुमरी गायन शैली का जन्म और विकास हुआ। इसमें श्रृंगार की अधिकता के कारण भोग-विलासी समजा ने इसे बहुत अपनाया। अगर ध्यान से देखा जाय तो टप्पे के संक्षिप्तीकरण से ही ठुमरी का प्रादुर्भाव हुआ है। इसी काल में वेश्याओं ने ठुमरी गायन को अपने व्यवसाय के लिए उपयोगी शैली समझकर हृदय से अपना लिया। परिणाम स्वरूप निम्न प्रकार के श्रृंगारिक गीतों का प्रचलन हो गया। यह निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जाता है कि ठुमरी में आराधना के स्थान

पर श्रृंगार के गीतों को भावाभिव्यक्ति के लिए ध्रुवपद ख्याल और टप्पा से अधिक विस्तृत स्थान मिलता है।

उपरोक्त वर्णित शैलियों के अतिरिक्त मुगलकाल एवं मुस्लिम प्रभाव के ही अन्तर्गत भारतीय स्वरों में भारतीय वातावरण ईरानी और फारसी वातावरण, संस्कृति का प्रवेश (मिश्रण) करके त्रिवट ,चतुरंग, तराना, गजल और कव्वाली आदि नवीन शैलियों का जन्म हुआ।

खुसरो ने जब कई दिवस तक गोपाल नामक का गाना छुपकर सुना तो उनकी शैली में प्रयुक्त होने वाले संस्कृत शब्दों के वह अर्थ तो न जान सका, मगर वह गायन शैली उसे पसन्द आयी। उसे मूर्च्छता आदि का ज्ञान तो था नहीं अतः अपने ईरानी संगीत के ज्ञान के आधार पर उस गायन शैली में निरर्थक कोमल शब्दों का प्रयोग कर लेख तराना नामक एक नई गायन शैली को जन्म दे दिया। तराने को गायकों केसाथ बोल ताली और सरगम की तानें का भी प्रयोग मुगल काल के प्रभाव की ही देन है। त्रिवट गात शैली भी मुस्लिम काल की देन या प्रभाव का परिणाम है। यह शैली तालवर्धों को लङन्त प्रदर्शित करने के लिए जन्मी थी।

गायन की चतुरंग शैली का जन्म भी मुस्लिम प्रभाव का परिणाम है। इसमें तबले के अथवा मृदंग के बोलों के साथ साथ साहित्य और नृत्य के भावों का भी समावेश मिलता है। उनके अतिरिक्त राग माला का भी जन्म हुआ जिसमें रागों के नाम के साथ राग भी बदलते रहते हैं।

मुगल वंश में उनके विचारों के प्रभाव से उन्हें शैलियों का ही अधिकतर जन्म हुआ जिसमें शास्त्र कम और अभ्यास के साथ साथ चमत्कार अधिक था अथवा गणित के खेल अधिक होते थे। जो जितना अधिक चमत्कार दिखा सकता था वह उतना बड़ा संगीतज्ञ माना जाता था। ऐसा केवल इसलिए था कि मुगल काल में गायन केवल मनोरंजन का

अथवा विलासिता का केवल एक अंग ही माना जाता रहा है। इसका स्पष्ट उदाहरण आज भी कथक नृत्य में देखा जा सकता है। जिसमें कृष्ण से सम्बन्धित सूर या मीरा के पद तो नहीं हैं पर उन लीलाओं का वर्णन अधिक है। जिनमें रसिकता हों या श्रृंगारिकता हो।

मुगल काल प्रारम्भ होने के पूर्व ही मुस्लिम काल में जो भी विदेशी वाद्य भारत में आये, उनका भारतीय वाद्यों के निर्माण एवं वादन पर प्रभाव पड़ा।

रसीद, सितार और तबला वाद्यों के जन्म की कथा मुस्लिम प्रभाव के साथ ही जुड़ी है। ख्याल भी इसका एक उदाहरण है । कुछ लोगों का मत है कि किन्तरी वीणा का विकसित रूप ही रबाब है। क्योंकि किन्नरी वीणा को शास्त्रों में 9 तार का वाद्य एवं कोण से बजाने को बात कही है। और आधुनिक रबाब के साथ भी ऐसा ही है। भारतीय शास्त्रों क अनुसार 'चित्रा' वाद्य की जो विशेषता है।

'सप्त तन्त्रो भवन्चित्रा विपंचो नवतन्त्रिका' विपंचो कोण वाया स्वात चित्रा चांगुलि वादन। (भारत नाट्य शास्त्र- पृष्ठ- 466) वही विशेषतायें सितार में भी पायी जाती है। अतः अमीर खुसरो ने इसी से प्रेरणा लेकर थोड़े परिवर्तन से सितार निर्मित किया होगा।

तबला भी मुगलकाल से अत्याधिक प्रचार में आया, जबकि कुछ इतिहासकारों के अनुसार इसका जन्म भी अमीर खुसरो को ही कृत्य है। इसके जन्म के विषय में विवाद अभी भी है। परन्तु यह सच है कि प्रारम्भ में मुगल दरबार में नर्तकों के साथ खडे होकर हो तबला वादन का नियम था। अतः इसी के अनुसार इसका जन्म और निर्माण हुआ। इसके साथ ही यह भी निर्विवाद है कि इसमें प्रयुक्त होने वाले बोल, ताने क्या विशेष रूप से इसको वाद शैली आदि का विकास मुगल काल को गायन एवं

नृत्य शैलियों के ,पभाव से अनुप्राणित रही और उनको आवश्यकतानुसार ही अपना विकास भी किया।

नवीन रचनाओं के सन्दर्भ में अमीर खुसरो के नाम को नहीं भुलाया जा सकता। मुगलकाल में हजारों ख्यालों की रचना हुई जो उनके वातावरण से प्रभावित होकर श्रृंगार प्रधान रचनायें हैं कोल बलवाना शैली के लिए फारसी मिश्रित भाषा का उपयोग हुआ जिनका विषय इस्लाम धर्म उनके तीर्थ थे। ख्याल में आश्रय दाताओं की प्रशस्तियाू भी खूब की गयी। जबकि शुद्ध भारतीय संगीत में मुस्लिम काल का मुगलकाल के पूर्व किसी भी शैली में ईश्वर के अलावा किसी भी प्रशस्ति नहीं गायी जाती थी। प्रशस्ति में भारतीय संगीत की पवित्रता की ओर भी अधिक हानि पहुॅचाई है। मुसलमान सकी चरम सीमा थी।

घरानों की परम्परा भी मुगलकाल का ही प्रभाव है। घरानों की परम्परा के विकास के लिए मुगलकाल का प्रभाव स्पष्ट है। प्रथम यह कि संगीत विद्वान राजश्रय में रहने लगे थे, उनकी कला का मान धन एवं पद से होता था। ऐसी स्थिति में कला की उनमुक्त भाव से बॉटने पर धन और पर खो जाने का भय था। राजश्रय में रहने के कारण है। प्रतिद्वन्द्विता और प्रतियोगिता के वातावरण में अपनी कला की विशेषताओं की अपने वंश तक सीमित रखने की परम्परा तीसरा कारण भी था। जो अधिक महत्वपूर्ण नहीं है, वह है कई पीढ़ियों तक एक ही परम्परा एवं एक ही शैली से गायन करना। इसके कारण कलाकार कूप मण्डूक होते गये और अपने से अलग किसी अन्य की गायन शैली की विशेषता को ग्रहण न कर सके। इसका कारण यह हुआ कि घरानों के कारण दुश्मनी चलती रही यह संगठित न हो सके और भारतीय संगीत के उन्नयन के लिए कोई सुद्रढ़ कदम न उठाया जा सका। घरानों ने संगीत की अस्पष्टता, दुर्बाधिता देकर उसके सुन्दर रूप को विकृत करके, उसमें से नवों रसों को सदैव के लिए निकाल दिया।

संगीत जगत पर मुगल काल का जो प्रभाव पड़ा उसका संक्षिप्त लेखा जोखा प्रस्तुत किया है। वास्तविकता यह है कि मुगलकाल के प्रभाव को भारतीय संगीत पर प्रदर्शित करने के लिए निश्चित रूप से एक विस्तृत ग्रन्थ के लिखने की आवश्यकता है। एक छोटे से लेख में इसी समेटना सम्भव नहीं है। फिर भी "समापन" शीर्षक के अन्तर्गत इस पर कुछ थोड़ा सा और विचार व्यक्त करूगा।

द्वितीय - अध्याय

संगीत का घराना

भिन्न-भिन्न घरानों का अभ्युदय मध्यकाल में हुआ। इस काल में अनेकों गायक, वादक तथा नर्तक हो गये। जिनके द्वारा अनेकों शिष्यों को संगीत की शिक्षा दी गयी। इनमें दो प्रमुख हैं। वंश परम्परागत तथा शिष्य परम्परागत। वंश परम्परागत में वे घराने आते हैं जिनके परिवार में अपने पूर्वजों की भाँति ख्याति अर्जित करते आ रहे हों। शिष्य परम्परा में वे लोग हैं जिन्होंने अपने शिष्यों को विधिवत संगीत की शिक्षा दी। जो कालान्तर में एक विशिष्ट घराना के रूप में आज भी अपनी गायन, वादन तथा नृत्य शैली के द्वारा घराना को जीवित रखे हुए हैं।

भारतीय संगीत को हम घराना को मुख्य तीन धाराओं में बॉटते हैं:-

(क) घरानों की उत्पत्ति।

(ख) घरानों का विकास।

(ग) संगीत में घराने तथा उनकी विशिष्टतायें।

(अ) घरानों की उत्पत्तिः

प्राचीन काल में संगीत के घरानों का सही सही पता नहीं लगता क्योंकि उस काल के सुप्रसिद्ध गायक, वादक तथा नर्तकों की क्रमबद्ध सूची नहीं प्राप्त है। संगीत पर लिखे ग्रन्थों के आधार पर कहा जा सकता है कि संगीत परम्परा के अन्तर्गत गायन, वादन तथा नर्तन रहा होगा। परन्तु उन कलाकारों तथा संगीतज्ञ के नाम अप्राप्य हैं, फिर भी कहा जा सकता है कि जाति गायन तथा प्रबंध गायन वीणा वादक, त्रिपंची, दुन्दुभि,भेरी, पटह मृदंग,डिमडिम , पणव आदि के बजाने वाले कलाकार रहे होंगे तथा यज्ञ के समय वीणा वादन, गायन तथा नर्तन की परम्परा थी।

मध्यकाल में यवनों के आक्रमण के पश्चात् ईरानी संगीत तथा भारतीय संगीत दोनों के मिश्रित प्रभाव संगीत पर पड़ा और प्रबंध गायन का दूसरा रूप ध्रुवपद तथा धमार आ गया।

मध्यकाल में ही अच्छे गायक, वादक तथा नर्तकों का नाम प्रत्यक्ष रूप से और इतिहासकारों द्वारा उल्लिखित तथ्यों के आधार पर उभरकर सामने आया। जिनके वंश परम्परा अथवा शिष्य परम्परा द्वारा गायन, वादन तथा नृत्य के कलाकारों का नाम आया। जो कालान्तर में 'घराना' नाम से सुविख्यात हो गया।

एक तरफ मध्यकाल में संगीत में शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों का प्रचलन होना तो दूसरी तरफ कियात्मक पक्ष द्वारा अच्छे-अच्छे साधकों का अभ्युदय हुआ।

इनमें जों भारतीय संगीत के प्रसिद्ध गायक, वादक तथा नर्तक हो गये। जिन्होंने अपनी प्रतिभा द्वारा एक विशेष गायन शैली को जन्म देकर अपने पुत्रों, अथवा शिष्यों को शिक्षा देकर घराना के प्रचलित किया। उनके द्वारा विशिष्ट शैली का अनुकरण उनके कुटुम्ब के लोग तथा शिष्यगण अब तक करते चले आ रहे हैं। विशेषत: गायन शैली को ही घराने की संज्ञा दी जाती है।

सभी घरानें के राग-स्वर तो प्राय: एक से ही होते हैं परन्तु उनके गायन शैली में एक दूसरे से भिन्न होते हैं जिन्हें घराने की गायकी कहा जाता है। मुगलकाल ने ध्रुवपद गायन शैली के अनेक कलाकार हुए जिन्होंने अपने गायन शैली द्वारा 'घराना' को जन्म दिया मध्यकाल में ध्रुवपद गायन की चार वाणियॉ प्रसिद्ध थीं, जिन्हें गाने वाले गायक अपनी परम्परानुसार प्रस्तुत करते थे।

(1) गोबरहाटी वाणी:

इसका प्रधान लक्षण प्रसाद गुणमुक्त है। यह शान्त रसोद्दायिक है और इसकी गति धीमी थी।

तानसेन गौड़ ब्राह्मण होने के कारण उनके द्वारा गाये ध्रुवपद का नाम गौड़ीय अथवा गोबरहारी वाणी पड़ा।

(2) खण्डहारी वाणी:

विचित्र एवं ऐश्वर्यदायक खण्डहार वाणी की विशेषतायें हैं। यह तीव्र रसोद्दायिक हैं। गोबरहार वाणी की अपेक्षा इसमें वेग और तरंगें अधिक होती हैं। किन्तु इसकी गति अति विलम्बित नहीं होती।

तत्कालीन प्रसिद्ध वीणावादक समोखना सिंह की शादी तानसेन की पुत्री के साथ होने के कारण उनका नाम नौषाद खाँ निश्चित हुआ। इनका निवास स्थान खंडहर था इसलिए उनकी वाणी का नाम खंडहार हुआ।

(3) डागुर वाणी:

इस शैली के गायन का प्रधान गुण सरलता और लालित्य है। इनकी गति सहज एवं सरल है। इनमें स्वरों तथा शब्दों का लयकारियों द्वारा विचित्रता दिखाना है।

(4) नोहार वाणी:

इसके गायन में चपलता होती है एक स्वर से दो तीन स्वरों का लंघन करके परवर्ती स्वर में पहुँचना इसका लक्षण है। यह वाणी विशेषतः किसी रस की सृष्टि नहीं करता बल्कि अद्भुत रसोदीपक है।

राजपुत्र श्रीचन्द नौहार के निवासी थे इसलिए उनका नाम नौहार वाणी पड़ा।

उपरोक्त वाणियों के आधार पर वंश- परम्परा तथा शिष्य परम्परानुसार मध्यकाल में गायन शैली के भिन्न भिन्न घरानों की उत्पत्ति हुई।

ख्याल गायन:

मुगल बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार में (सन् 1719 से 1748) के दरबार में प्रसिद्ध गायक सदारंग तथा अदारंग प्रसिद्ध गायक थे जो अच्छे ध्रुवपदिये थे। उन्होंने हजारों ख्याज शैली के गीतों की रचना करके अपने शिश्यों को सिखाया। ख्याल गायन की कल्पना अदारंग-सदारंग का ही था। इसमें स्थायी अन्तरा दो पदों को किसी राग ताल में बांधकर आलाप और तानों द्वारा चमत्कार प्रदर्शित करके गाया जाता है।

ध्रुवपद गायन शैली धीरे धीरे कम होने लगी और ख्याल गायन शैली का अट्ठारहवीं शताब्दी में जन्म हो गया जो आज भी लोकप्रिय है। इस प्रकार ख्याल गायन के भिन्न भिन्न घरानों की उत्पत्ति हुई।

इसी प्रकार टप्पा गायन शैली का जन्म गुलाम नवी मियाँ द्वारा प्रचार में आया इनका काल (1775 से 1795) था। इस शैली के गायकों का अलग घराना हो गया।

ठुमरी घराना:

टप्पा गायन के साथ साथ ठुमरी गायन एक मधुर भावपूर्ण शैली का जन्म हुआ। इस प्रकार बनारस तथा पंजाब ठुमरी गायन शैली के लिए प्रसिद्ध हो गया। टप्पा तथं ठुमरी गायन की शैली ने अपना एक अलग घराना कायम किया।

(ख) **घरानों का विकास:**

भिन्न भिन्न गायन शैलियों के आधार पर घरानों का विकास हुआ। इसमें ध्रुपद गायकों का घराना, ख्याल गायकों का घराना, टप्पा तथा ठुमरी गायकों का घराना प्रमुख है।

घरानों का विकास मुगलकाल के सोलहवीं शताब्दी से प्रारम्भ होना शुरू हो गया जबसे ध्रुवपद गायन में चार वाणी को गोबरहार, खपहार डागुर तथा नौहार का

जन्म हुआ। उन चार वाणियों की गयन शैली एक दूसरे से भिन्न थी। अतः वंश परम्परागत या शिष्य परम्परागत एक दूसरे से अलग पहचाने जाते थे। इसी प्रकार ख्याल गायकी में भिन्न भिन्न संगीतज्ञों द्वारा अपनी विशेषता तथा गायन शैली के आधार पर घरानों को जन्म दिया। चूँकि ध्रुवपद तथा ख्याल एक जोरदार गायकी के परिपूर्ण गायन है इसलिए टप्पा तथा ठुमरी अर्थात टप्पा चमत्कार पूर्ण गायन तथा ठुमरी भाव प्रधान गायन द्वारा भी इन शैलियों का घराना नाम से विकास हुआ सभी गायन शैलियाॅ तथा इनको प्रस्तुतकर्ताओं का अलग स्थान है जो घरानों का विकास करने में तत्पर है।

(ग) संगीत में घराने तथा उनकी विशिष्टतायें:

किसी भी घराने की परम्परा को स्थायी रखने के लिए पीढ़ी दर पीढ़ी की आवश्यकता होती है। प्रत्येक घराने की निरन्तरता की भावना होनी चाहिए। घराना पुश्त दर पुश्त चलता है उसी में घराने की मर्यादा होती है। किसी विशेष गायक की व्यक्तिगत प्रतिभा के प्रोत्साहन से ही जरूरी नहीं है कि एक घराना कायम हो जाय । जब तक यदि कई पीढ़ियों तक गायन उसी शैली की परम्परा का अनुसरण न करे।

प्रत्येक घराने में कुछ विशेषतायें होती है जो उनकी परम्परा को कायम रखती है। गायकों में कुछ ऐसे प्रसिद्ध गायक हो गये हैं, जिन्होंने अपनी प्रतिभा से एक विशेष शैली को जन्म देकर उसे अपने पुत्रों तथा शिष्यों को सिखाकर घराना को जन्म दिया। उनकी उस शैली को अनुकरण उनके शिष्यगण तथा कुटुमबी अब तक करते चले आ रहे हैं। उनके गायन शैलियों को ही घराने का नाम दिया जाता है। सभी घरानों के राग- स्वर तो प्रायः एक से ही रहते हैं। परन्तु उनके गाने को प्रस्तुत करने का ढंग एक दूसरे से भिन्न होता है। इसीलिए उनकी गायकी के ढंग से यह कहा जाता है कि यह गायकी अमुक घराने से सम्बन्धित है।

गायकों के मुख्य पाँच घरानों का ही वर्णन पुस्तकों में मिलता है परन्तु उनके अतिरिक्त कई ऐसे घराने हैं जिनके बारे में या तो विचार नहीं किया गया था उनके द्वारा गायन विशेषताओं पर ध्यान नहीं दिया गया। मुगलकाल होने के कारण अधिकतर मुसलमान गायकों द्वारा प्रदत्त गायन शैलियों के घराने उभर कर सामने आये। जैसे-

(1) ग्वालियर घराना

(2) जयपुर घराना

(3) किराना घराना

(4) आगरा घराना

(5) दिल्ली घराना या खुजी घराना

इनके अतिरिक्त-

(6) तानसेन घराना

(7) कव्वाल बच्चों का घराना

(8) हापुड़ घराना

(9) अल्लादिया खॉ घराना।

प्रत्येक घरानों की अपनी विशिष्ट गायकी होती है जो उसकी विशिष्टता के परिचायक है।

निम्नवत विशेषताये -

(क) प्रत्येक प्रतिष्ठित घराने का अपना अलग आलाप का कलात्मक अनुशासन होता है। जिससे उसकी शैली का जन्म होता है।

(ख) प्रत्येक घराने के आवाज का लगाव और स्वर लगान, उच्चारण अलग होता है। घराने के परिवार अथवा शिष्यगण गुरू के आवाज लगाने के तरीके तथा स्वर लगान का अनुकरण करते हैं।

(ग) प्रत्येक घराने के कुछ मुख्य राग और उनकी बंदिशें होती हैं। जिनके द्वारा कभी कभी घरानों की पहचान होती है।

(घ) अपनी मौलिक गायकी के कारण कुछ घराने प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं। जैसे- ख्याल में बोल - बाँट का बोल तानों का प्रयोग, भिन्न भिन्न लयकारियों का प्रयोग कुछ कठिन तानों का टप्पा अंग से प्रयोग इत्यादि है जिससे घराने को पहचाना जा सकता है।

(1) **ग्वालियर घराना:**

इस घराने के जन्म दाता प्रसिद्ध संगीतज्ञ उस्ताद हद्दू खॉ तथा हस्सू खॉ के दादा स्व0 नत्थन पीरबख्श माने जाते हैं। उनकी वंश परम्परा निम्नवत है:-

इस घराने की नींव 19वीं सदी के पूर्व हो गयी थी।

नत्थन पीरबख्श

कादिर बख्श पीर बख्श

हस्सू खॉ हद्दू खॉ नत्थू खॉ

गुलेहमास रहमत खॉ मुहम्मद खॉ

मेंहदी हुसेन खॉ

उस्ताद नत्थू खॉ कादिरबख्श के पुत्र थे। परन्तु ये अपने चाचा पीरबख्श की गोद थे। हस्सू खॉ , हद्दू खॉ तथा नत्थू खॉ ये तीनों भाई प्रसिद्ध ख्याल गायक तथा ग्वालियर के दरबारी गायक थे।

गुले इमाम खॉ के पुत्र मेंहदी हुसेन को राग तोड़ी गायन में विशिष्टता प्राप्त थी। इस परम्परा के महाराष्ट्रिय शिष्य बालकृष्ण बुआ , इचलकरंजीकर, वासुदेव जोशी एकनाथ तथा बाबा दीक्षित थे। बालक कृष्ण बुआ के शिष्य पं0 विष्णु दिगंबर पलुस्कर

जी ने बम्बई जाकर ग्वालियर घराने की गायकी का प्रचार किया। फलस्वरूप पं0 ओमकारनाथ ठाकुर, पं0 बिनायकराव , पटवर्धन, नारायण राव व्यास आदि प्रसिद्ध गायक हुए। नत्थू खॉ को कोई संतान न होने के कारण उन्होंने निसार हुसेन को, गोद ले लिया और संगीत की शिक्षा दी। निसार हुसेन अपनी प्रतिभा तथा परिश्रम से अच्छी प्रसिद्धि पाई तथा ग्वालियर दरबार के गायक नियुक्त हो गये निसार हुसेन की शिष्य परम्परा निम्नवत है:-

निसार हुसैन

शंकर पंडित　　　　राम कृष्ण　　　　भाऊराव आदि

कृष्णराव पंडित　　　　राजा भैया पूछवाले

ग्वालियर घराने की गायकी में निम्नलिखित विशेषतायें उल्लेखनीय है:-

(1) रागों का शास्त्रोक्त तरीके से गायन।

(2) खुली आवाज द्वारा जोरदार गायन।

(3) ख्याल को ध्रुवपद अंग से गाना।

(4) बोल बॉट तथा बोल तानों का प्रयोग।

(5) सपाट तानों का प्रयोग तीनों सप्तक में।

(6) टप्पे अंग के तानों का कहीं कहीं प्रयोग।

(7) बोल, बॉट द्वारा लयों का प्रदर्शन

(8) आलाप में गमक का प्रयोग।

(2) **जयपुर घराना:**

इस घराने के जन्मदाता मनरंग बताये जाते हैं। इनके वंशज मुहम्मद अली खॉ हुए और मुहम्मदअली खॉ के पुत्र आशिक अली खॉ हुए। कालान्तर में इस घराने के

दो उप घराने हो गये- (1) पटियाला घराना (2) अल्लादिया खाँ घराना। जयपुर घराने की विशेषताओं के साथ-साथ इन उपधाराओं ने कुछ और विशेषताओं को गायकी अंग में पैदा करके अपनी गायन शैली विकसित किया।

जयपुर घराने की निम्नलिखित विशेषतायें थीं:-

(1) आवाज लगाने की अपनी स्वतंत्र शैली

(2) खुल आवाज में गायन।

(3) गीतों की संक्षिप्त भावपूर्ण बन्दिश।

(4) आलापचारी की बढ़त।

(5) वक्र तानों का प्रयोग।

(6) तानों में मुर्की का प्रयोग।

(7) ख्याल की बन्दिशों में चमत्कारिता।

(3) किराना घराना:

इस घराने का सम्बन्ध प्रसिद्ध बीनकार बन्देअली खॉ से बताया गया है। स्व0 अब्दुल करीम खॉ तथा अब्दुल वहीद खॉ ने इस घराने की ख्याति को पढ़ाकर प्रतिष्ठित किया। अब्दुल करीम खॉ के आवाज लगाने की एक विचित्र शैली थी, जो मधुर और भावपूर्ण थी, वर्तमान में अब्दुल करीम खॉ की गायकी उनके गाये रिकार्डो द्वारा सुना जा सकता है जैसे- पिया बिना नाहीं आवत चैन, जमुना के तीर। इनकी आवाज सुमधुर तथा पतली थी। अब्दुल करीम खॉ के प्रमुख शिष्यों में स्व0 सवाई गन्धर्व, स्व0 सुरेश बाबू, राम भाऊ, गनपत बुआ बेहरे, हीरा बाई बड़ोदकर है। वर्तमान समय में किराना घराने से सम्बन्धित पं0 भीमसेन जोशी, श्रीमती गंगू बाई हंगल, फिरोज खॉ, उस्ताद स्व0 रजवली खॉ, स्व0 उस्ताद अमीर खॉ, रोशन आरा, बेगम प्रतिष्ठित कलाकार हो गये।

इनके शिष्य परम्राओं की एक लम्बी सूची है।

किराना घराने की गायकी की मुख्य विशेषतायें: -

(1) खुली आवाज में गाना।

(2) स्वरों की राग में धीरे धीरे बढ़त।

(3) एक एक स्वरों को भिन्न भिन्न प्रकार से सजाकर राग में बढ़त करना।

(4) आलाप प्रधान गायकी।

(5) ख्याल गायन के गीतों में भाव प्रधान बनाना

(6) ठुमरी अंग की विशेषता।

(7) मेरु खण्ड तानों का प्रयोग, अर्थात् स्वरों में भिन्न भिन्न प्रकार से कठिन अलंकारों द्वारा तान रचना।

(4) <u>आगरा घराना:</u>

इस घराने के जन्मदाता अलखदास और मलूकदास को माना जाता है। परन्तु वास्तव में इस घराने के प्रवर्तक हाजी सुकान (तानसेन जी के दामाद) हैं जिन्होंने ध्रुवपद पुरा के धमार शैली को आगे बढ़ाया इसलिए आगरा घराना में ध्रुवपद तथा धमार गायकी ख्याल गायन के साथ साथ रहा। ध्रुवपद धमार के साथ ख्याल गायन की अपनी विचित्र ढंग था। आगे चलकर खुदा बख्श 'घग्गे' द्वारा इस घराने का प्रचार हुआ। खुदाबख्श जयपुर अलवर के प्रसिद्ध ध्रुवपद गायक बहराम खाँ के समकालीन थे। आगरा घराने की गायकी में बहुत सी बातें ग्वालियर घराने से मिलती जुलती हैं। क्योंकि खुदाबख्श ने ग्वालियर के नत्थन पीरबख्श से ख्याल गायकी की शिक्षा प्राप्त की थी तथा बाद में ये आगरा आ गये।

खुदाबख्श के पुत्र गुलाम अब्बास इस घराने के मार्गदर्शक माने जाते हैं। इनका 120 वर्ष की उम्र में देहान्त हुआ। इनके तीन प्रमुख शिष्य हो गये। जयपुर के कल्लन

खाँ (सगे छोटे भाई) उनके सुपुत्र स्व0 तसद्दक हुसेन (जो कई वर्षो तक बड़ोदा रियासत में थे) बम्बई के प्रसिद्ध ख्याल गायक स्व0विलायत हुसेन खाँ तथा नत्थन खाँ था। खुदाबख्श के लड़के गुलाम अब्बास ने उस्ताद फैयाज खाँ को संगीत शिक्षा दी थी। उस्ताद फैयाज एक प्रतिष्ठित गायक हो गये।

नत्थन खाँ के दो सुपुत्र अबदुल्ला खाँ तथा मुहम्मद खाँ तथा शिष्य भाष्कर राव बखले अच्छे गायक थे। अलवर जयपुर के प्रसिद्ध गायक बहराम खाँ (ध्रुवपद धमार गायक) ने 'डागुरवाणी' को स्थापित किया । उसी प्रकार खुदाबख्श ने आगरा घराने की नींव डाली।

इस प्रकार आगरा को उतरौली तथा मथुरा के प्रसिद्ध गायक 'चन्दन चौबे' गुलाम अब्बास के शिष्य थे। अतरौली के महबूब खाँ 'दरसपिया' आगरा के थे। शिक्षित वर्ग में उस्ताद फैय्याज खाँ के शिष्यों में पं0 श्री कृष्ण नारायण राता जानकर दिलिप चन्द्र वेदी, सुशील कुमार चौबे, आदि उल्लेखनीय हैं।

आगरा घराने की गायकी की मुख्य विशेषतायें:-

(1) ध्रुवपद अंग से नाम तोम का आलाप।

(2) ख्याल गायन के बन्दिशों का प्रस्तुतीकरण।

(3) ख्याल-गायकी के साथ साथ ध्रुवपद धमार गायन

(4) बोल तानों का विशेष प्रयोग।

(5) रागों की शास्त्रीयता।

(6) रागों को स्वरों और शब्दों के माध्यम से भावात्मक तथा रसात्मक प्रदर्शन।

(7) बोलबॉट तथा लयकारियों का प्रयोग।

आगरा घराना

अलखदास		मलूक दास	
हाजी सुजान		सरसरंग	श्यामरंग
जग्गूखॉ	सस्सू खॉ	गलाब खॉ	खुदाबख्श
शेर खॉ		गुलाम अब्बस	कल्ल्न
नत्थन खॉ		फैयाज खॉ (धेवते)	तसछदुबे हुसेन
मुहम्म्द खॉ	अब्दुल्ला खॉ	विलायत हुसैन	बन्ने खॉ

(5) दिल्ली घराना:

दिल्ली घराने के सुप्रसिद्ध गायक कुतुब वख्श को तत्कालीन बादशाह ने 'तानरस खॉ' की उपाधि से विभूषित किया था। इस प्रकार 'तानरस खॉ' दिल्ली घराने को स्थापित किया। सदारंग तथा अदारंग के काल से ही दिल्ली ख्याल गायन का केन्द्र हो गया। मुहम्मद शाह रंगीले (1719 से 1748) के काल से ही ख्याल शैली की संगीत में विशेष प्रधानता मिलनी शुरू हो गयी। ध्रुवपद गायकों के दिन प्रतिदिन कम होने लगा तथा ध्रुवपद की अपेक्षा चमत्कारपूर्ण ख्याल गायन जनमानस में उन्नति की दिशा में अग्रसर होने लगा।

गायकों में ख्याल गायक हद्दू- हस्सू खॉ तानरस खॉ, खुदा बख्श और मुबारक अली खॉ जैसे धुरन्धर कलाकारों के आगे ध्रुवपद गायन फीका पड़ने लगा। दिल्ली के श्रोताओं ने ख्याल गायन में अपना विशिष्ट स्थान स्थापित कर लिया। औरतों में भी ख्याल गायकी को आगे बढ़ाया जिनमें तत्कालीन नरबाई अच्छी गायिका हुई। कहा जाता

है कि दिल्ली घराने के बाद अन्य घरानों का जन्म हुआ। तानरस खाँ को ही हिन्दुस्तानी संगीत के दिल्ली घराने के सर्वश्रेष्ठ गायक माना जाता है।

तानरस खाँ ने संगीत की शिक्षा अपने पिता उसताद कादिर बख्श से प्राप्त की थी। पटियाला के फतेह अली और अली बख्श इनके प्रमुख शिष्य थे। फतेह अली और अली बख्श की जोड़ी बाद में 'अलिया फत्तू' के नाम से प्रसिद्ध हो गये। इस प्रकार पटियाला घराना भी दिल्ली घराने का ही एक अंग था। तानरस खाँ के पुत्र उमराव खाँ श्रेष्ठ गायकों में थे, ये संगीत के शास्त्र तथा क्रियान्तमक दोनों ही अपना विशिष्ट स्थान रखते थे। अलियाफत्तू बहुत अच्छा गाते थे परन्तु उमराव खाँ के आगे नतमस्तक रहते थे। उमराव खाँ के सुपुत्र सरदार खाँ पाकिस्तान के श्रेष्ठ कलाकारों में थे। वर्तमान में इस घराने को उस्ताद चाँद खाँ तथा उस्ताद नसीर अहमद ने बढ़ाया।

दिल्ली घराने के गायकी की विशेषतायें:

(1) तान लेने की चमत्कारिक पद्धति जैसे- जोड़ तोड़ की तान, झूला तान, उखेड़तान फन्दे की तान आदि।

(2) द्रुतलयों में तेज तानों का प्रयोग।

(3) ख्यालों की कलापूर्ण बन्दिशें।

(4) ताल और लय पर अधिकार।

(5) कठिन तालों में आकार का सही प्रयोग।

(6) सुन्दर स्वरों के मेल द्वारा कलात्मक अंगों का प्रदर्शन।

(7) कालान्तर में पंजाबी के ठुमरी गायन।

(6) <u>तानसेन घराना:</u>

तानसेन अकबर काल के श्रेष्ठ कलाकारों में से थे । जिनके बारे में अबुल फजल

ने लिखा है कि एक हजार वर्षो में ऐसा कलाकार पैदा नहीं हुआ। इनके दामाद नौबत खॉ अच्छे बीणा वादक थे। इसी घराने के कलाकारों में रामपुर के उमराव खॉ खंडारे, उनके पुत्र रहीम खॉ तथा अमीर खॉ हुए। अमीर खॉ के पुत्र वजीर खॉ एक गुणी संगीतज्ञ तथा अच्छे बीनकार थे, जो ध्रुवपद धमार भी गाते रहे। वजीर खॉ रामपुर नवाब हामिद अली के दरबार में थे साथ ही साथ पं0 भातखण्डे जी के गुरू भी थे। इनके पौत्र दबीर खॉ उत्तम वीणा वादक थे। तानसेन ने सहस्त्रों ध्रुवपद की रचना की थी। तानसेन के चार पुत्र और एक पुत्री थी। पुत्रों का नाम सुरतसेन, तरंगसेन, शरतसेन और विलाख खॉ अच्छे गायक थे तथा लड़की का नाम सरस्वती था। इनके सभी संतानें अच्छे कलाकार होकर तानसेन घराने को वंश परम्परागत तथा शिष्यों द्वारा आगे बढाया। इनके शिष्यों में अच्छे गायक तथा बीनकार हो गये। आज भी डागुर वाणी के ध्रुपादिये अपने को तानसेन घराना के वंशज मानते हैं। इनके दामाद के घराने के वजीर खॉ एवं पौत्र दबीर खॉ अच्छे बीनकार हो गये।

तानसेन घराने की गायकी विशेषेतायें:

(1) ध्रुवपद अंग का धीमी धीमी गति का आलाप

(2) रागों की शास्त्रीयता

(3) ध्रुवपद धमार के भक्तिपूर्ण शिक्षाप्रद शब्दों का प्रयोग।

(4) वीणा में आलापचारी का बाहुल्य।

(7) कव्वाल बच्चों का घराना:

अमीर खुसरो ने संगीत के क्षेत्र में नये नये आविष्कार किये इन्होंने गायन में एक नवीन शैली को जन्म दिया जिसे कव्वाली कहते हैं।

दिल्ली में सामवन्त तथा बूला नामक दो भाई रहते थे, इनके खानदान वालों को कव्वाल बच्चों का खानदान कहा गया। इनके घराने में शक्कर खॉ, मक्खन खॉ

तथा जद्दू खाँ के पुत्र मोहम्मद खाँ, रहमत खाँ और हिम्मत खाँ अच्छे ख्यालिये थे। इनमें इनायत खाँ ठुमरी गायन के अच्छे कलाकार हो गये। ग्वालियर के गणपत राव ख्याल तथा ठुमरी दोनों में अच्छे कलाकार थे।

सादिक अली खाँ शिष्यों में मैजुद्दीन खाँ थे जो बाद में बनारस के अच्छे ठुमरी गायक हो गये। आपके पिता उस्ताद गुलाम हुसेन अच्छे गायक थे। आपने पिता के मृत्यु के उपरान्त पटियाला घराने के सुप्रसिद्ध गायक अलिया-फत्तू से ख्याल गायकी की शिक्षा ली तथा बनारस के अप्रतिम ठुमरी गायक श्री जगदीप मिश्र के सान्निध्य में-बैठकर ठुमरी गायन की छोटी छोटी चीजों का अभ्यास किया। कालान्तर में आप जगदीप मिश्र की रससिद्ध ठुमरी गायकी की प्रतिमूर्ति बनकर ठुमरी के विशिष्ट गायन शैली में श्रेष्ठ कलाकार हो गये। ख्याल और ठुमरी दोनों में शिक्षा के कारण आपके गले में गमका , खटका, मूर्की, फिरत की तान सुरीलापन तथा माधुर्य पूर्णतया आ गये। रिकार्डिंग कम्पनी एच0एम0वी0 में आज भी आपके रिकार्ड मौजूद हैं जैसे- (1) पानी भरेरी, कौने अलबेले की नाई हो झमाझम (2) पिराय मोरी अँखिया, राजा हमसे न बोलो (3) पिया बिन नाही आवत चैन (4) बाजु बन्द खुली खुली जाय । 45 वर्ष की अल्पायु में बनारस में आपका स्वर्गवास हो गया। इनके शिष्यों में काशी की सुप्रसिद्ध गायिका बड़ी मोती थी।

(8) हापुड़ घरानाः

यह भी दिल्ली घराने से सम्बन्धित घराना है। लखनऊ के बाबा नसीर खाँ इसी घराने के थे। इनके पिता जी का दिल्ली घराना था। दिल्ली के अब्दुल करीम खाँ इसी दिल्ली घराने के थे। ये संगीत में तत्कालीन अच्छे कलाकारों में गिने जाते थे। उस्ताद शब्बू खाँ हापुड़ घराने के थे जो बाद में हैदराबाद चले गये थे। प्रतिभाशाली

सुयोग्य गायक थे। एक संगीत गोष्ठी में इन्होंने पं0 भातखण्डे जी के सम्मुख राग मालकौंस गाया, इसमें गान्धार ऐसे ढंग से प्रयाग किय कि भातखण्डे जी न इनकी बार बार प्रशंसा की। शब्दों का उच्चारण तथा तानों का प्रयोग इस घराने की विशेषतायें थीं। ख्याल के प्रतिष्ठित घराने ग्वालियर, आगरा घराने के बाद दिल्ली घराना प्रतिष्ठित था, इसी घराने से जुड़ी हापुड़ घराना था । इस घराने के अधिकतर गायक अन्य स्थानों में चल गये।

(9) अल्लदिया खाॅ का घराना:

आधुनिक युग में एक घराना अल्लादिया खाॅ का भी है। उनके पूर्वज अतरौली के रहने वाले थे बाद में इस घराने के लोग जयपुर के पास एक जगह उनियारा में बस गये। इसे अतरौली घराना भी कह सकते हैं जो अल्लादिया खाॅ घराना से जुड़ा है। अल्लादिया खाॅ ने ख्याल गायकी के सुप्रसिद्ध कलाकार थे। उन्होंने ख्याल गायकों में अपनी सूझ बूझ से तथा कुछ नये प्रयोग करके अपने घराने का निर्माण किया।

इनके पिता का नाम ख्वाजा अहमद खाॅ तथा चाचा का ना जहाॅगीर खाॅ था। इन्होंने, अपने चाचा सुप्रसिद्ध गायक जहाॅगीर खाॅ से संगीत की शिक्षा पायी थी। इनके दो भाई ओर थे, हैदर खाॅ तथा नत्थन खाॅ। हैदर खाॅ की प्रमुख शिष्या बड़ौदा की लक्ष्मी बाई थी। भोगूबाई कुइडीकर भी इसी घराने की थीं जिनकी शिक्षा अल्लादिया खाॅ के भाई नत्थन खाॅ से हुई थी। भोगूबाई अपने समय की सुप्रसिद्ध गायिका हो गयी। अल्लादिया खाॅ के प्रमुख शिष्यों में केशर बाई केरकर थी जिन्होंने ख्याल गायकी में प्रसिद्ध हुई, आज भी उनके एच0एम0वी0 के रिकार्ड प्राप्त हैं। सन् 1950 में अल्लादिया खाॅ का स्वर्गवास हो गया उनके घराने की एक मात्र शिष्या केशरबाई रह गयीं। इनके गाने कोमल आसावरी, मारुबिहाक तथा नन्द बहुत लोकप्रिय हुए । अल्लादिया खाॅ की गायकी पेचीदा थी क्योंकि इनके गायन में ग्वालियर के बड़े उस्ताद मुबारक खाॅ के लड़के मुबारक अली

के गायन कर प्रभाव पड़ा था वे अपने को मुबारक अली के गायन का नकल करने वाला बताते थे।

जो भी हो अललादिया खाँ चोटी के गायक और विलक्षण प्रतिभा के विद्वान थे यही कारण है कि इन्होने अपनी अलग गायकी का आविष्कार करके संगीत जगत में अपनी एक अलग पहचान करके अपने घराना को स्थापित किया।

यह सत्य है कि किसी काल में काशी का क्रमबद्ध इतिहास लिखने का प्रयास नहीं किया गया। यदि प्रयास भी किया गया होगा तो न जाने कितने ग्रन्थ क्रमबद्ध उपलब्ध नहीं हैं, या तो काल के गाल में समा गये अथवा जान बूझकर नष्ट कर दिये गये। जिनसे वास्तव में कालक्रमानुसार व्यवस्थित तथा प्रामाणिक इतिहास का अभाव है।

सरस्वती की अजस्त्र नाद धारा निरन्तर प्रवाहित होकर आज भी इस नगरी एवं यहाँ के संगीतज्ञों के वर्चस्व को गौरव प्रदान करती चली आ रही है।

जिस नगर की संगीत परम्परा इतनी विशाल ,प्राचीन और गौरवपूर्ण रही हो, वहँ के गौरवशाली इतिहास का कलाक्रमानुसार दिग्दर्शन कराने वाले उचित ग्रन्थ का अब तक अभाव रहा है जो अत्यन्त खेदजनक है।

तृतीय अध्याय

बनारस घराने की उत्पत्ति एवं विकास

(क) विशिष्टतायें:

उत्तरवाहिनी माँ गंगा के पवित्र तट पर बसी बाबा विश्वनाथ की नगरी काशी विश्व की प्राचीनतम धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, कला साधक नगरी के रूप में अनेक शताब्दियों पूर्व से अपनी दिव्यता, पांडित्य-विविधता एवं संगीत की उपासना एवं विश्व की पूजनीय आकर्षक स्थली रही है। वेद, उपनिषद, पुराण, रामायणं, महाभारत आदि सैकडों सद्ग्रन्थों से लेकर जैन तथा बौद्ध साहित्य, मुगल एवं ब्रिटिशि कालीन प्रकाशित शास्त्रों तथा आधुनिक साहित्य में इस नगरी की प्राचीनता तथा सांस्कृतिक चेतनता के उल्लेख प्राप्त होते हैं जो इस नगरी की विशिष्टता के परिचायक है।

संगीत कला के उच्चतम कला साधकों का श्रृखलाबद्ध परम्परा काशी की महत्ता सदियों से राष्ट्र गौरव की प्रतीक है। गायन, वादन एवं नर्तन की विविध शैलियों के प्रणेता, विद्वानों तथा कलाविद् के रूप में काशी की सम्माननीय विभूतियों ने संगीत जगत में अपनी लोकप्रियता से अनेक कीर्तिमान स्थापित कर इस नगरी को गौरवान्वित किया है। जिनमें से कुछ ही कला साधकों तथा कलाकारों के जीवन परिचय से समाज परिचित हो पाया है।

संगीत, कला एवं साहित्य की अनुपम नगरी, काशी संगीत के क्षेत्र में गायन, वादन एवं नर्तन तीनों ही शैलियों को आत्मसात किया है। जिसके फलस्वरूप भारत के अन्य प्रदेशों से आये विविध शैलियों के संगीत विद्वानों ने भी अपनी मनमोहक, गोपनीय संगीत लहरी को काशी के कलाकारों के मध्य सहज भाव में खोल दिया। शास्त्रीय संगीत की मर्यादित परिधि में प्रतिष्ठापित करने का एक मात्र श्रेय बनारस घराने के ही कलाकारों को दिया जा सकता है। उपशास्त्रीय संगीत में ठुमरी की विशेष विधायें प्रचलित हैं, एक

विलम्बित गति से गाये जाने वाली ठुमरी दूसरी बन्दिश की ठुमरी। विलम्बित गति से गाये जाने वाली ठुमरी स्वरों तथा शब्दों की भाव प्रधान गायकी है जो शास्त्रीय रागों पर आधारित है। इसी प्रकार बन्दिश की ठुमरी में भाव प्रधान के साथ साथ चपलता है।

रससिद्ध कलाकारों के अतिरिक्त सुयोग्य शिक्षक शास्त्र पारंगत , सफलमान्य वाग्गेयकार, संगीत तथा साहित्य के ज्ञाता, अनूठी बन्दिशों के भिन्न भिन्न रागों तथा तालों में गाये जाने वाले रचनाकारों की एक लम्बी सूची काशी की ही देन है।

काशी के संगीतज्ञों को चौमुखी गायक कहा गया है। यहाँ के एक अच्छे गायक द्वारा संगीत की शास्त्रीय शैलियों को समान नियमबद्ध शास्त्रीयता के आधार पर सुना जा सकता है, जैसे- ध्रुवपद , धमार, ख्याल, तराणा, टप्पा, ठुमरी तथा उपशास्त्रीय गायन। जो बनारस घराने के गायकों में एक विशिष्ट गुण को दर्शाता है।

काशी की अनूठी एवं मनमोहक संगीत परम्परा के असंख्य मूर्धन्य कलाविदों, विश्वप्रसिद्ध कलाकारों, ध्रुवपीढ़ी के मेधावी साधनारत कलासाधकों की पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही गुरू - शिष्य परम्परा की श्रृंखला ने राष्ट्र, समाज तथा संगीत कला क्षेत्र को अनगिनत हस्ताक्षर दिये हैं। जिसमें काशी नगरी की संगीत परम्परा को गौरवान्वित किया है।

(ख) <u>प्रमुख कलाकारः</u>

काशी को अति प्राचीन काल से ही देश की सांस्कृतिक केन्द्र स्थली होने का सौभाग्य मिला है। शिल्प हो अथवा कला, धर्म हो अथवा दर्शन, साहित्य हो अथवा संगीत- सभी क्षेत्रों में इस अप्रतिम नगरी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। संगीत के विगत तीन चार सौ वर्षो से प्राप्त आधे अधूरे अवशिष्ट इतिहास के अवलोकन से यह स्पष्ट

विदित होता है कि आदिदेव महादेव की नगरी तथा माँ गंगा की धारा निरन्तर प्रवाहित होकर आज भी इस नगरी एवं यहाँ के संगीतज्ञों के वर्चस्व को गौरव प्रदान करती चली आ रही हैं।

संगीत जगत में गायन, वादन तथा नृत्य में अनेकों जाज्वल्यमान नक्षत्रों के रूप में इस नगरी ने श्रेष्ठ कलाकारों को प्रदान किया है जो निम्नवत हैं:-

1- प्रसिद्ध मनोहर

2- शिवदास-प्रयाग मिश्र

3- पं0 राम सहाय

4- प्रताप महाराज

5- शिवसहाय- राम सेवक

6- शम्भूनाथ मिश्र

7- भैरो सहाय

8- सुमेरू मिश्र

9- बड़े गणेश मिश्र

10- शीतल मिश्र

11- दरगाही मिश्र

12- ठाकुर प्रसाद मिश्र

13- बलदेव सहाय

14- बिरई मिश्र

15- बिहारी मिश्र

16- ननकू लाल मिश्र

17- शिवा पशुपति मिश्र

18- मौजुद्दीन खाँ

19- बड़े रामदास मिश्र

20- छोटे रामदास मिश्र

21- सरजू प्रसाद मिश्र

22- पं0 कंठे महाराज

23- जियाजी मिश्र

24- मौलवीराम मिश्र

25- बीरू मिश्र

26- राम मिश्र

27- हरिशंकर मिश्र

28- दाऊजी मिश्र

29- श्रीचन्द मिश्र

30- अनोखे लाल मिश्र

31- उस्ताद मुश्ताक खॉ

32- पं0 रविशंकर

33- उस्ताद विसमिल्ला खॉ

34- सितारा देवी

35- गुदई महाराज

36- पं0 किशन महाराज

37- हनुमान प्रसाद मिश्र

38- गोपाल मिश्र

39- बैजनाथ मिश्र

40- सिद्धेश्वरी देवी

41- रसूलन बेगम

42- पं0 महादेव प्रसाद मिश्र

43- श्रीमती गिरजा देवी

44- गणेश प्रसाद मिश्र

45- पं0 शारदा सहाय

46- राजन साजन मिश्र

47- अमरनाथ पशुतिनाथ

48- बागीश्वरी देवी

49- जालपा प्रसाद मिश्र

50- रंगनाथ मिश्र

आदि अनगिनत सशक्त हस्ताक्षर अपने जीवन काल में ही संगीत जगत की गौरवगाथा वन चुके हैं।

उपरोक्त कलाकारों का संगीत जगत में देन एवं संक्षिप्त परिचय:

(1) प्रसिद्ध-मनोहर:

श्री ठाकुर दयाल मिश्र के यशस्वी पुत्र थे। गायन क्षेत्र में इनकी जोड़ी ने यश प्राप्त किया। प्रसिद्ध मिश्र जिनका पूरा नाम हरप्रसाद मिश्र था। इनका जन्म सन् 1808 में काशी में हुआ। मनोहर जी मिश्र इनसे बड़े भ्राता थे। इनके गायन की चर्चा सुनकर मुगल सम्राट बहादुर शाह जफर ने अपने दरबार में विशिष्ट कलावन्त नियुक्त किया और प्रसिद्ध मिश्र से संगीत शिक्षा ली। मुगल दरबार की तरफ से इन्हें बनारस-जौनपुर जिले में शिवपुर, जुड़पुर, परमपुर जागीर के रूप में दी। आपकी कला से प्रभावित होकर अयोध्या के नवाब सादत अली खॉ ने अपना दरबारी गायक नियुक्त किया। उनके दरबार में शोरी मियॉ टप्पे के विद्वान थे जिनसे इन दोनों भाइयों ने लगभग सात वर्षो तक टप्पा

की तालीम ली। इन्हें पटियाला नरेश महेन्द्र प्रताप सिंह द्वारा सर्वश्रेष्ठ गायक 'सच्चे श्रुतिधर' की संज्ञा दी। पूरे पंजाब में आप लोगों का यश फैल गया फलस्वरूप पटियाला घराने के धुरन्धर गायक बन्धु आलिया-फत्तू 'तानकप्तान' के पिता कालू मियाँ एवं चाचा लालू मियाँ ने प्रसिद्ध मनोहर मिश्र का शिष्यत्व ग्रहण करने में विशेष गौरव अनुभव किया। संगीत साधना एवं उच्चकोटि के गायक होने के नाते इनकी विलक्षण विद्वता तथा संगीत साधना तथा गायन से प्रभावित होकर नेपाल दरबार से 'संगीतनायक' की उपाधि से सम्मानित किया गया मनोहर मिश्र का जन्म सन् 1794 तथा देहावसान 1846 ई0 में हुआ। श्री प्रसिद्ध मिश्र का जन्म 1802 तथा मृत्यु सनृ 1868 ई0 में हुआ।[1] आप छन्द, प्रबन्ध, ध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी आदि समान अधिकार से गाते थे।

(2) **शिवदास-प्रयागः**

बनारस घराने के अपने समय के प्रसिद्ध कलाकार हो गये। ये दोनों भाई कुशल गायक थे। शिवदास जी बीन, सितार, सुरसिंगार आदि वाद्यों के भी उत्कृष्ट कलाकार थे। काशी नरेश ईश्वरीनारायण के दरबारी गायक एवं नाजिर थे। फलस्वरूप विभिन्न शैलियों के उत्कृष्ट कलाकारों का दरबार में कार्यक्रम होता था। ये दोनों गायक ध्रुवपद , धमार, ख्याल, टप्पा, होरी के श्रेष्ठ गायक थे। इनके सुपुत्र श्री मिठाई लाल जी अपने युग के अनुपम गायक हुए।

पं0 शिवदास-प्रयाग की वंश परम्परा एवं शिष्य परम्परा में गायन, बीन, सारंगी, के अनेक उत्कृष्ट कलाकार हुए।

(3) **पं0 राम सहायः**

इनका जन्म काशी में सन् 1780-90 के मध्य हुआ। तीन वर्ष की आयु से

1- काशी की संगीत परम्परा, पृ0 79-80

ही तबला शिक्षा अपने पिता तथा चाचा से बीस वर्ष की आयु तक निरन्तर चलता रहा। अवध के नवाबों के शासन काल में दरबार में अनेकों महफिलें होती थीं। पं0 राम सहाय जी को इनके पिता तथा चाचा लखनऊ ले आये इनके तबला वादन से प्रभावित होकर उस्ताद मोदू खॉ ने इन्हें शिक्षा देने की जिज्ञासा की, फलस्वरूप बारह वर्षो तक तबला की विधिवत शिक्षा मोदू खॉ से प्राप्त किया। इनके तबला वादन भारतवर्ष के प्रसिद्ध तबला वादकों के सन्मुख सात दिनों तक लगातार चलता रहा। सभी विद्वानों ने यह स्वीकार किया कि इस विद्वान वादक के समान पूरे देश में कोई दूसरा तबला वादक नहीं है। बाद में काशी आ गये तथा तबला वादन की शिक्षा द्वारा अपना अलग तबला घराना की वादन परम्परा को स्थापित किया । इनके द्वारा स्थापित तबला घराना में वंश परम्परागत तथा शिष्य परम्परागत बनारस घराने के सभी श्रेष्ठ तबला वादक जुड़े हुए हैं।

(4) <u>प्रताप महाराजः</u>

ये श्रेष्ठ तबलावादक थे तथा पं0 राम सहाय जी द्वारा शिक्षा प्राप्त किये थे। इन्हें श्री परप्पू जी के नाम से सुप्रसिद्ध किया गया। इन्हें विन्ध्याचल के पास सिद्धपीठ कालीखोह के काली मॉ की सिद्धि प्राप्त थी। यह सिद्ध है कि इनके तबलावादन के पश्चात किसी भी गायक या वादक का कार्यक्रम सफल नहीं होता था। पं0 प्रताप महाराज के वंश परम्परा में मॉ काली के आशीर्वाद से अच्छे तथा उत्कृष्ट तबला वादकों में से हैं इनकी शिष्य परम्परा की एक लम्बी सूची है जो देश विख्यात तबला वादकों में है। स्व0 पं0 सामता प्रसाद उर्फ गुदई महाराज इसी वंश परम्परा के सर्वश्रेष्ठ तबला वादक थे।

(5) <u>शिवसहाय रामसेवकः</u>

पं0 शिव सहाय मिश्र श्री प्रसिद्ध जी के ज्येष्ठ पुत्र थे। श्री रामसेवक मिश्र

श्री प्रसिद्ध जी के कनिष्ठ पुत्र थे। इन लोगों को संगीत की शिक्षा श्री प्रसिद्ध मनोहर जी से प्राप्त हुई। ये दोनों भाई ध्रुवपद , धमार, ख्याल , टप्पा तथा होरी आदि में सर्वश्रेष्ठ कलाकार थे। इनके भी वंश परम्परा तथा शिष्य परम्परा के अनेकों मेधावी तथा श्रेष्ठ कलाकार हो गये।

(6) पं0 शम्भू नाथ मिश्र:

आपके घराने में पीढ़ी दर पीढ़ी अनेकों सारंगीवादक हुए। इनका जन्म (सन् 1855 - 56) में मिर्जापुर में हुआ। बाद में ये काशी में रहने लगे। इनके वादन पाण्डित्य के साथ साथ आपके वादन में गायन के सभी प्रयुकत होने वाले जैसे- गमक, ठोक, मुर्की आदि की भरपूर विशेष्ता थी। आप एकल तथा संगत दोनों में ही प्रसिद्ध कलाकार हो गये। आपकी भी वंश परम्परा तथा शिष्य परम्परा के अनेकों अच्छे उत्कृष्ट सारंगीवादकों का नाम अग्रणी है। इन्होंने बहुत सी ठुमरी की बन्दिशें भी बनाई।

(7) भैरो सहाय:

इनका जन्म काशी में सन् 1815 में हुआ। पं0 राम सहाय जी के कनिष्ठ भ्राता श्री गौरी सहाय जी के एक मात्र पुत्र थे। छः वर्षो तक पं0 राम सहाय जी तत्पश्चात अपने पिता तथा चाचा से शिक्षा प्राप्त किये कठोर परिश्रम के कारण बीस बाईस वर्ष की आयु में ही अपने घराना (पं0 राम सहाय जी) के श्रेष्ठ तबला वादक हो गये। आप गायन , वादन, नृत्य तीनों में ही कुशल संगत कर्ता तथा एकल वादन के सिद्धहस्त कलाकार थे। आपकी वंश परम्परा तथा शिष्य परम्परा में काशी के अनेकों तबलावादक हुए जो स्वयं में घराना को जन्म दिया।

(8) **सुमेरु मिश्र:**

इनका पूरा नाम श्री राम सुमेर मिश्र था। सुप्रसिद्ध सारंगीवादक श्री शंकर मिश्र के सुपुत्र थे। इनका जन्म काशी में सन् 1868 में हुआ था। ये शीघ्र ही निरन्तर अभ्यास के द्वारा काशी के गुणी सारंगीवादक हो गये। आपके वादन शैली में सबसे कठिन गान्धर्व टप्पा अंग था। आपने देश के सुप्रसिद्ध गायकों के साथ संगति की। आप सारंगी के साथ साथ टप्पा गायन तथा ख्याल गायन के कलाकार थे।

(9) **बड़े गणेश मिश्र:**

आपका जन्म काशी में सन् 1850 के लगभग हुई थी। टप्पाबाज में इनका घराना प्रमुख स्थान रखता है। इनके घराने में टप्पा की असंख्य बंदिशें थीं इन्हें ख्याल टप्पा तथा गायन की विविध शैलियों में संगत करने में महारथ थी। इनके परिवार में सभी अच्छे संगीतवादक हुए। इन्हें गायन का भी अच्छा ज्ञान था इनके परिवार में पं0 गोपाल मिश्र , पं0 हनुमान मिश्र उच्चकोटि के सारंगीवादक हुए वर्तमान में पं0 राजन साजन मिश्र एक सर्वश्रेष्ठ गायकों में हैं।

(10) **पं0 शीतल मिश्र :**

पं0 शीतल मिश्र- बड़े गणेश मिश्र के अनुज थे ये भी कुशल सारंगीवादक थे। ये अत्यन्त सुरीले सारंगीवादक थे। ये गायन के साथ साथ टप्पा वादन शैली के अच्छे कलाकार थे। इन्होंने भारतवर्ष में सारंगीवादन में काशी का नाम रोशन किया।

(11) **पं0 दरगाही मिश्र:**

अपने पिता मूर्धन्य तबला वादक श्री शरण जी के एक मात्र पुत्र पं0 दरगाही मिश्र अच्छे तबला वादक थे। इन्होंने पियरी घराने के मूर्धन्य विद्वान कलावन्त श्री शिव सहाय मिश्र एवं अपने श्वसुर श्री शिवदास प्रयाग जी से गायन एवं तंत्र वादन की शिक्षा ली।

अपने पिता के कला साधना को उत्तरोत्तर विकसित किया। इनकी वंश परम्परा तथा शिष्य परम्परा में अनेकों विद्वान गायन, वादन , तबला तथा नर्तन आदि के सुयोग्य कलाकार हुए। कालान्तर में अपनी विद्वता से अपने घराने के विशिष्टता प्रदान की।

(12) ठाकुर प्रसाद जी:

आपका जन्म काशी में 1840 ई0 में हुआ। आपकी गायन की शिक्षा पियरी घराने के मूर्धन्य विद्वान प्रसिद्ध मिश्र के ज्येष्ठ पुत्र श्री शिव सहाय मिश्र द्वारा हुई। गायन में ख्याल तथा टप्पा के मूर्धन्य विद्वान वीणा और सारंगी के भी सिद्धहस्त कलाकार थे। इन्होंने गायन में अपनी नाती पं0 छोटे रामदास मिश्र, हुस्ना बाई तथा सारंगी में पं0 वैजनाथ मिश्र को सुयोग्य कलाकार बनाया। आपके घराने के पं0 छोटे रामदास मिश्र ख्याल तथा टप्पा गायकी में विशिष्ट स्थाना बनाया। इनका देहावसान सन् 1944-45 में हुआ।

(13) श्री बलदेव सहाय:

पं0 राम सहाय मिश्र की वंश परम्परा के रससिद्ध मनमोहक तबला वादक थे। तबला की शिक्षा अपने पिता पं0 भैरो सहाय जी से प्राप्त हुई। इन्हें 'वाद्य रसराज' से लोग कहते थे। अपने रससिद्ध तबला वादन से आप काशी तथा देश के गुणी वादकों में स्थान प्राप्त कर लिया। आपने नेपाल दरबार में भी थे तबला वादन में गायक, वादकां तथा नर्तकों का मन जीत लिया आपके अनेकों सुयोग्य कुशल तबला वादक शिष्य हुए जिनमें से शीर्षस्थ तबला वादक पं0 कण्ठे महाराज थे।

(14) पं0 बिरई मिश्र:

काशी के सुविख्यात सारंगी वादक थे। इनके वादन में शेरखानीबाज तथा टप्पा बाज की विशेषता थी इनके पुत्र पं0 सीताराम मिश्र तथा शिष्य श्री सीताराम मिश्र द्वारा अनेकों सारंगी के शिष्य हुए।

(15) श्री बिहारी मिश्रः

आप सारन्दा वाद्य (सारंगी से बड़ा) के कुशल एक एकमात्र वादक थे। आपके पिता बनारस के संगीत विद्वानों में गिने जाते थे। बिहारी मिश्र के पिता पं0 दीनू मिश्र भी गायक और सारगीवादक थे। कालान्तर में आप काशी नरेश महाराज बलवन्त सिंह के दरबार में एक मात्र सारन्दा वादक नियुक्त हुए। आपके दो पुत्र पं0 मुंशीराम तथा मौलवी राम भी कुशल सारंगीवादक हुए जिनके वंश परम्परा तथा शिष्य परम्परा में अनेकों सिद्धहस्त सारंगीवादक हैं जो एक घराना के रूप में है।

(16) पं0 ननकू लाल मिश्रः

इनके पिता पं0 अयोध्या प्रसाद मिश्र संगीत के अनेक विधाओं के ज्ञाता थे। पं0 ननकू लाल मिश्र नेपाल राजदरबार के प्रमुख कलावन्त थे। ये आजीवन नेपाल के शाही परिवार के राजगुरू पद पर प्रतिष्ठित रहे। काशी के अद्वितीय सितार वादक पं0 ननकू लाल जी गायन, तबला, बीन तथा नृत्य के विद्वान थे। इन्होंने गायन तथा सितार में बहुत सी बन्दिशों की रचना की। इनकी लिखी "नानक नमूना' तथा संस्कृत में "आद्या स्तुति" सराहनीय है इन्हें अनूठे लयसम्राट, ध्रुवपद, धमार, ख्याल आदि शैलियों के विशिष्ठ कलाकार माना जाता था। इनकी पुस्तकों में ख्याल मजनादि का संग्रह है। पंडित जी संगीत शास्त्र पक्ष तथा क्रियात्मक पक्ष के अद्वितीय विद्वान थे। समय समय पर काशी आने पर सभी विद्रतजन इनके विलक्षण प्रतिभा का लाभ लेते थे। काशी में सन् 1960-65 ई0 में दिवंगत हुए।

(17) पं0 शिवा पशुपति मिश्रः

गायन की अनूठी जोड़ी शिवा पशुपति जी नेपाल तथा सम्पूर्ण भारत के विख्यात गायक थे। ये ध्रुवपद , धमार, ख्याल, टपख्याल, टप्पा तथा होरी अदि के विलक्षण गायक

थे। श्री पशुनाथ मिश्र गायन के साथ साथ अपने युग के धुरन्धर बीनकार भी थे। कलकत्ता नगर एवं आस-पास की अनेक रियासतों के राजा, नवाब, जमीन्दार एवं सम्भ्रान्त परिवारों को संगीत शिक्षा देकर पूरे बंगाल में काशी की कीर्ति को उज्ज्वल किया। गायन की सभी शैलियों के विद्वान कलाकार अनेकों संगीत सम्मेलनों में भाग लिया जहॉ इन्हें स्वर्णपदक तथा संगीताचार्य की उपाधि दी गयी इनकी वंश परम्परागत तथा शिष्य परम्परा में अनेकों मूर्धन्य कलाकार हुए।

(18) उस्ताद मौजुद्दीन खॉ:

बनारसी ठुमरी के अद्वितीय कलाकार मौजुद्दीन खॉ की गायकी में भाव पूर्णता तथा रसीलापन था आपका जन्म पंजाब में पटियाला के समीप निहन रियासत में सन् 1875576 के लगभग हुआ था। इनके पिता उस्ताद गुलाम हुसेन तथा चाचा उस्ताद रहमत हुसेन था। दोनों ही भ्राता गायन तथा सितार के विद्वान थे। मौजुद्दीन जब चार या पॉच वर्ष के थे तभी इनके पिता इन्हें लेकर काशी आ गये। ख्याल गायकी की शिक्षा पटियाला के अलिया-फत्तू से प्राप्त करने समय समय पर पटियाला जाते थे। एक बार काशी अप्रतिम ठुमरी गायक पं0 जगदीप मिश्र की ठुमरी सुनकर प्रभावित हुए। तत्पश्चात् उन्हीं के सान्निध्य में छोटी छोटी चीजें ठुमरी का अभ्यास किया। तथा ठुमरी गायकी के श्रेष्ठ रस सिद्ध कलाकार होकर सन् 1919ई0 में काशी से ही दिवंगत हुए।

(19) पं0 बड़े रामदास मिश्र:

काशी के मूर्धन्य विभूतियों में अग्रगण्य गायक पं0 बड़े रामदास जी का जन्म काशी में सन् 1977 में हुआ। ये चारों पठ के सुहृद गायक थे। अपने पिता पं0 शिवनन्दन मिश्रा से ख्याल,टप्पा, टपख्याल, ठुमरी, होरी आदि की शिक्षा ग्रहण किया तथा अपने श्वसुर पं0 जयकरन मिश्र (बेतिया घराने के मूर्धन्य ध्रुवपद धमार गायक) से ध्रुवपद धमार

की लगभग चार पॉच सौ बन्दिशो को कण्ठस्थ किया। उस से 18 घण्टों तक अभ्यास करने वाले पण्डित जी दिन प्रतिदिन देश के मूर्धन्य कलाकार हो गये। काशी के सभी कलाकारों में आपका उच्च स्थान था। नेपाल नरेश ने इनकी ख्याति से प्रभावित होकर अपने देरबार में निमन्त्रित किया तथा दरबार में विशिष्ट गायक के रूप में रख लिया। जहॉ ये लगभग पन्द्रह वर्ष रह गये वहॉ से पुनः काशी आ गये। देश के भिन्न भिन्न संगीत सम्मेलनों तथा रियासतों में कार्यक्रम दिया। जिससे इनकी ख्याति भारतवर्ष के श्रेष्ठ गायकों में हो गया। पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर इनके गायन से प्रभावित होकर इन्हें 'हिन्दू जाति का झण्डा' कहकर सम्बोधित किया। आपकी गायकी में चारों पट के गायक थे। इन्होंने अनेक रागों, तालों में हजारों बन्दिशों का निर्माण किया जो इनका सराहनीय तथा अद्वितीय कार्य रहा। इनके वंश परम्परा तथा शिष्य परम्परा में अनेकों मूधन्य कलाकार है जो देश विदेश में नाम अर्जित कर रहे हैं। इन्होंने गायक, सारंगी-वादक, सितारवादक, वायलिन वादक, शहनाईवादक आदि सभी श्रेणी के अनेक सुप्रसिद्ध शिष्यों की शिक्षा दी जो काशी को गौरव प्रदान कर रहे हैं। प्रसिद्ध सन्तूर वादक पं0 शिवकुमार शर्मा के पिता उमादत्त शर्मा इन्हीं के शिष्य थे गायन में अनगिनत ऐसे सितारे हैं जो काशी के गौरव को बढ़ा रहे हैं जिनका नाम देश विदेश में उच्चकोटि के कलाकारों में है।

इन्हें संगीत भूषण, संगीतोपाध्याय, संगीत सम्राट, संगीत कलानिधि, संगीताचार्य आदि अनेकों सम्मानित उपाधियों तथा स्वर्णपदकों से सम्मानित किया गया।

पं0 बड़े रामदास मिश्र 83 वर्ष की अवस्था में 11 जनवरी 1960 ई0 को काशी में स्वर्गवासी हुए।

(20) **पं0 छोटे रामदास मिश्र:**

आपका जन्म काशी के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ घराने में सन् 1889-90ई0 में हुआ था। मूलतः आजमगढ़ के हरिहरपुर ग्राम के थे। आपके पिता महाराज माण्डा के दरबारी

कलारत्न थे। आपको संगीत शिक्षा नाना मूर्धन्य विद्वान ठाकुर प्रसाद मिश्र से मिली थी। पं0 राम सेवक मिश्र से दिलबहार, सितार बीन की शिक्षा तथा पं0 लक्ष्मी दास जी से ध्रुवपद की शिक्षा मिली थी। इस प्रकार ध्रुवपद, धमार, ख्याल, टप्पा, गुल, सिन्धी पंजाबी काठिया बीन, सितार, दिलबहार, कर्नाटक गायन शैली आदि के विलक्षण विद्वान थे। आप भारत के तथा नेपाल दरबार के सभी रियासतों के सुप्रसिद्ध गायक थे। आपने कलकत्ता में सन् 1935 में श्रीकृष्ण संगीत विद्यालय की स्थापना की जहाँ मूर्धन्य कलाकार आपके सान्निध्य में थे। पं0 छोटे रामदास थे जो कि देश के अनुपम कलाकार थे। आपके शिष्य परम्परा के अनेकों शिष्य हुए। सन् 1961 में काशी में आपका स्वर्गवास हुआ।

(21) **पं0 सरजू प्रसाद मिश्रः**

प्रसिद्ध सारंगीवादक पं0 शम्भू नाथ मिश्र के पुत्र थे। सारंगी की शिक्षा अपने पिता से प्राप्त की थी आप सकालीन सारंगीवादकों के बीच संगीत के विविध पक्षों के विशिष्ट विद्वान एवं स्वतंत्र वादन एवं संगति में विख्यात सारंगीवादक थे। राग-रागनियों के शास्त्रीय पक्षों के मूर्धन्य विद्वान माने जाते थे। आपने देश के मूर्धन्य कलाकारों के साथ संगति करके काशी के गौरव को बढ़ाया था। आपके परिवार में पं0 बैजनाथ मिश्र देश के प्रख्यात संगीत वादक हुए। अपके शिष्यों की एक लम्बी सूची है जो अच्छे सारंगी वादक हुए। आपका जन्म सन् 1879-80 तथा मृत्यु 1944 में हुआ।

(22) **पं0 कण्ठे महाराजः**

तबला वादन के सर्वश्रेष्ठ कलाकार एवं विद्वान थे। आपका जन्म काशी में सन् 1879 में हुआ। अपने युग में बनारस बाज एवं घराने की वादन शैली के सर्वाधिक लोकप्रिय सिद्धहस्त विद्वान और प्रतिनिधि तबला वादक के रूप में सुविख्यात हुए। आप पं0 रामसहाय जी के वंशज पं0 बलदेव सहाय से तबला वादन शैली की शिक्षा प्राप्त की।

बनार घराने के तबला बाज की अमूल्य, दुर्लभ अनूठी बन्दिशों का संग्रह आपके वादन में था। आपने अपने काल में असंख्य शिष्यों को तबला की शिक्षा दी जो देश विदेश में अपना नाम तथा काशी को गौरवान्वित किया। आपके उत्तराधिकारी सर्वश्रेष्ठ मूर्धन्य विद्वान पं0 किशन महाराज देश तथा विदेश में ख्याति अर्जित की है। संगीत की अटूट आराधक तबला विद्वान श्री कण्ठे महाराज जी का सन् 1967 ई0 में काशी में निधन हुआ।

(23) **श्री सियाजी मिश्रः**

अपने युग के मूर्धन्य सारंगी वादक थे। आपके पिता श्री श्याम चरण मिश्र अच्छे सारंगीवादक थे। जिन्होंने सारंगी के साथ साथ स्वरचित बहुत सी बन्दिशें बनाई थीं। सियाजी का जन्म सन् 1888 ई0 में काशी में हुआ था। इनका वादन शैली अत्यन्त सुमधुर तथा प्रभावशाली था। आप संगीत में विशेष कराल थे। टप्पा जैसे कठिन गायकी को भरपूर बजाते थे। वादन के साथ साथ गायन में भी बहुत सी बन्दिशें याद थीं। आपकी प्रमुख शिष्याओं में गायिका श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी तथा काशी बाई थीं जिन्होंने गायन में विशेष स्थान बनाया।

(24) **श्री मौलवी राम मिश्रः**

पं0 बिहारी मिश्र के ज्येष्ठ पुत्र थे। इनके पिता सारन्दा वाद्य (सारंगी के समान बड़ा वाद्य) के एक मात्र वादक थे। मौलवी राम ने अपने पिता से तबला वादन की शिक्षा प्राप्त करके प्रमुख कलाकारों के साथ तबला की मुख्यतः शिक्षा पं0 राम सहाय जी के वंश के श्री बलदेव जी से प्राप्त कर ख्याति अर्जित की।

(25)पं0 वीरू मिश्रः

सुप्रसिद्ध तबला वादक श्री बीरू जी छबीले जी के पुत्र थे। तबला की शिक्षा श्री विश्वनाथ जी से प्राप्त किये। आपको जालपा देवी (ज्वाला माता) माँ की कृपा हुई जिससे ये तत्कालीन तबलावादकों में श्रेष्ठ स्थान बना लिया। भारतवर्ष के सभी स्थानों संगीत सम्मेलनों तथा रियासतों में अपने मनोमुग्धकारी वादन से अपने को प्रतिष्ठापित किया।

(26) पं0 राम प्रसाद उर्फ रामू मिश्रः

अपने युग के मोजुद्दीन खाँ के नाम से विख्यात तथा ठुमरी गायन के अनुपम गायक रामू जी का जन्म काशी में सन् 1901 में हुआ था। आपके पितामह श्री मथुरा मिश्र मझौली स्टेट के दरबारी गायक थे जो ख्याल, ध्रुवपद धमार, टप्पा ठुमरी के उत्कृष्ट कलाकार थे। गायन की सभी शैलियों की शिक्षा दस वर्ष की उम्र तक दादा से शिक्षा प्राप्त किये इनके अकस्मात मृत्यु के पश्चात् काशी के मूर्धन्य संगीत विद्वान पं0 बड़े रामदास मिश्रा के चरणों में बैठकर प्राप्त किया। कालान्तर में आपका विशेष झुकाव टप्पा तथा ठुमरी की रसीली, मनमोहक राग की तरफ हुआ फलस्वरूप ठुमरी गायन में आप भारतवर्ष के उत्कृष्ट पूरब अंग की ठुमरी तथा काशी की गायकी को गौरवान्वित किया। भारतवर्ष की सुप्रसिद्ध गायिका श्रीमती केसर बाई ने आपसे ठुमरी टप्पा की शिक्षा ली थी। भारत वर्ष के सभी मूर्धन्य कलाकार आपके गायन के प्रशंसक थे। कलकत्ता के एक संगीत सम्मेलन में सभी मूर्धन्य कलाकारों ने पूरब अंग की ठुमरी में 'ठुमरी सम्राट' की उपाधि दी। कालान्तर में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में संगीत संकाय में छः माह तक रहकर अनेकों शिष्य शिष्याओं को ठुमरी टप्पा की शिक्षा दी।

(27) पं0 हरिशंकर मिश्रः

काशी सुप्रसिद्ध संगीत परिवार में आपका जन्म सन् 1917 ई0 में हुआ। आपके

पिता पं0 श्यामसुन्दर मिश्र, चाचा, बड़े रामदास जी मिश्र लब्ध प्रतिष्ठ गायक थे। आप भारत के प्रमुख नगरों संगीत सम्मेलनों में उत्कृष्ट कार्यक्रम द्वारा कलाकारों के प्रसंशक हो गये। आप गायन में छन्द-प्रबंध, ध्रुवपद-धमार, ख्याल-टप्पा, सरगम, गुलनक्श, रूबाइयाँ ठुमरी, चैती, होली आदि के मूर्धन्य गायक थे। लयकारी में आपका विशिष्ट स्थान था। मृदंग तथा तबला के विशिष्ट कलाकारों ने आपके गायन के साथ संगत कर आपकी भूरि-भूरि प्रसंशा की। आपने नेपाल दरबार तथा रामपुर दरबार के विशिष्ट कलाकार थे। प्राचीन, अप्राचीन, प्रचलित अप्रचलित रागों तथा तालों के मूर्धन्य विद्वान थे। आप भातखण्डे संगीत महाविद्यालय लखनऊ में प्राध्यापक गायन पद पर भी लगभग 18 वर्षो तक सेवा की। आपके अनेक शिष्य परम्परा में मूर्धन्य कलाकार हुए। आपको उ0प्र0 संगीत नाटक एकेडमी का सम्मान प्राप्त हुआ तथा संगीताचार्य, संगीत महोमहापाध्याय, सर्वश्रेष्ठ कलाकार की उपाधि से विभूषित किया गया था। आपका देहावसान 1990 में काशी में हुआ।

(28) पं0 दाऊ जी मिश्र:

पं0 दाऊ जी मिश्र पं0 बड़े रामदास के शिष्य थे। बनारस घराने के निष्णात विद्वान दाऊ जी ख्याल, टप्पा, ठुमरी आदि में विशेष ख्याति अर्जित की थी। आप के द्वारा जबड़ा तान का गाने वाला दूसरा कोई विद्वान नहीं था। इनके पिता पं0 वंशी जी मिश्र सारंगी के विद्वान कलाकार थे। आप ध्रुवपद धमार बहुत अच्छा गाते थे। इनका स्वर्गवास काशी में सन् 1940ई0 को हुआ।

(29) श्री श्रीचन्द्र मिश्र:

गायकी- नायकों के अद्‌भुत प्रतिभा सम्पन्न पं0 श्रीचन्द्र मिश्र का जन्म 1914ई0 में काशी में हुआ। इनके पिता का नाम पं0 सरजू मिश्र था। पं0 दरगाह मिश्र घराने के विद्वान वंशज श्रीचन्द्र जी अपने परिवार के अतिरिक्त अद्वितीय गायक पं0 मिठाई

लाल मिश्र से संगीत शिक्षा ली। आप ध्रुवपद, धमार, ख्याल, ठुमरी आदि समान अधिकार से गाते थे। आपकी संगीत शिक्षा देने की शैली विशेष प्रशंसनीय रहा। आपकी प्रमुख शिक्षा लोकप्रिय गायिका श्रीमती सीरजा देवी हैं। सभी वाद्य यंत्रों के कुशल वादक पं0 श्रीचन्द्र के शिष्यों में सितार वादक पं0 सुरेन्द्र मोहन मिश्र, अमरनाथ मिश्र तथा पं0 पन्ना लाल मिश्र (गायक एवं सरोद वादक) रहे। मात्र 54 वर्ष की आयु में आपका काशी में सन् 1968 ई0 में निधन हो गया।

(30) पं0 अनोखेलाल मिश्रः

तबला वादन के मूर्धन्य कलाकार पं0 अनोखेलाल का जन्म 1913 ई0 में काशी में हुआ। आपके पिता का नाम श्री बुद्ध प्रसाद मिश्र था। मात्र तीन वर्ष की आयु में माता पिता के स्वर्गवास होने पर आपने तबला की शिक्षा सुविख्यात प्रसिद्ध तबला वादक श्री भैरों सहाय जी से प्राप्त की। जीवन साथी के रूप में कठिन साधना ही एक मात्र इनका उद्देश्य रहा। आप अपने काल के सर्वश्रेष्ठ तबला वादकों में थे। गायन वादन नर्तन तीनों विधाओं के निष्णात वादक थे। देश तथा विदेशों में तबला वादन से गुणी कलाकारों का मन मोह लिया। आपको न धी धी ना का बादशाह कलाकार कहा गया है। भारत के सभी नगरों के संगीत-सम्मेलनों में आपका सफल कार्यक्रम हुआ । भारत के सभी उच्चकोटि के कलाकारों के साथ आपका तबला संगति अद्वितीय था। आपके ज्येष्ठ पुत्र पं0 रामजी मिश्र कुशल तबला वादक हैं तथा शिष्य परम्परा में अनकों शिष्य हैं। सन् 1958 ई0 में काशी में आपका स्वर्गवास हुआ।

(31) उस्ताद मुश्ताक खाँः

इनका जन्म काशी में सन् 1911ई0 में हुआ था। आपके पिता श्री आशिक अली खाँ सितार वादन के योग्य गुणी कलाकार थे। इनकी शिक्षा अपने पिताजी से प्राप्त

हुई। आप सितार तथा सुरबहार दोनों ही बजाते थे। सुमधुर सितार वादन से पूरे भारतवर्ष में आपने ख्याति अर्जित की। आपको भारत के राष्ट्रपति द्वारा संगीत नाटक एकेडमी सम्मान तथा 1973 में रविन्द्र भारती विश्वविद्यालय से डी0लिट् की उपाधि से सम्मानित किया गया। आपकी वादन शैली सेनिया घराने से सम्बन्धित था। आपके शिष्यों में काशी के श्री रामदास चक्रवर्ती प्रमुख थे।

(32) पं0 रविशंकर जी:

सितार वादन के अद्वितीय विद्वान पं0 रविशंकर जी का जन्म काशी की पवित्र भूमि में सन् 1920ई0 में हुआ था। बीसवीं शताब्दी के अनुपम संगीत रत्न, भारतीय संगीत के अग्रदूत, विद्वान जिनकी कला साधना का जादू विश्व के कोने कोने में व्याप्त है। इनके पूर्वज मूलतः पूर्वी बंगाल के थे जो बाद में काशी आ गये। विश्व की महान संगीत विभूति विद्वान सरोद वादक उस्ताद अलाउद्दीन खॉ से विधिवत् सितार की शिक्षा ग्रहण किया। आपने देश विदेश में अच्छे-अच्छे शिक्ष्यों को शिक्षा दी जैसे लोकप्रिय गायक जार्ज हैरिसन, विश्व प्रसिद्ध वायलिन वादक श्री यहूदी मेनुहिन, जुब्रीन मेहता आदि। देश के अनेकों सर्वोच्च उपाधियों से आपको सम्मानित किया गया। 'रिम्पा' नामक संस्था की आपने नींव डाली है।

(33) उस्ताद बिस्मिल्ला खॉ:

वर्तमान युग में शहनाई वाद्य के विश्वविख्यात वादक का जन्म सन् 1916 ई0 में डुमराव (बिहार) में हुआ। काशी की महत्तम विभूति पद्मश्री, पद्मविभूषण, डी0लिट् , देशिकोत्तम आदि देश विदेश के अनेकों संस्थाओं द्वारा सम्मानित खॉ साहब शहनाई के पर्याय बन चुके हैं। संगीत परिवार में जन्म लेकर शहनाई वादक की शिक्षा पितामह, चाचा तथा पिता श्री पैगम्बर खॉ से मिली। सात वर्ष की आयु में आप काशी अपने ननिहाल आ गये तथा अपने नाना सुप्रसिद्ध शहनाई वादक श्री अलीबख्श से प्राप्त

की। देश के अनेकों संगीत समारोहों में आपका अद्वितीय शहनाई वादन ने सबका मन मोह लिया। आपके हजारों की संख्या में कैसेट रिकार्ड हैं। विदेशों में कोई स्थान ऐसा नहीं है जहाँ आपके वादन ने लोगों के मन को न जीता हो। आप राग रागिनियों के विद्वान गायक के सभी विद्याओं के विद्वान वादक हैं। आपके अनेकों कुशल वादक शिष्य शहनाई के भविष्य को उज्ज्वल कर रहे हैं।

(34) श्रीमती सितारा देवीः

बनारस घराने की प्रख्यात नृत्यांगना चलचित्र जगत की कलानेत्री , नृत्यनिर्देशिका योग्य नृत्यशिक्षिका श्रीमती सितारा देवी का जन्म 1920-25 ई0 के मध्य हुआ। इनके पिता पं0 शुकदेव मिश्र नृत्य के सुर्वविख्यात गुणी कलाकार थे। आपका कथक नृत्य के अतिरिक्त भरतनाट्यम, मणिपुरी, कुचिपुड़ी तथा पाश्चात्य नृत्यों को भी सीखने में रुचि ली। भारतवर्ष के अतिरिक्त आप विदेशों में भी बहुत से कार्यक्रमों में ख्याति अर्जित की। आपको अनेकों सम्मान जैसे- पद्मश्री, कालीदास सम्मान आदि से सम्मानित किया गया।

(35) श्री सामता प्रसाद उर्फ गुदई महाराजः

इनका जन्म काशी के यशस्वी, प्रतापी, नक्षत्री तथा सिद्ध तबलावादक श्री प्रताप महाराज के कुल में काशी के कबीर चौरा में सन् 1920ई0 में हुआ। तबला की शिक्षा आठ वर्ष की आयु तक अपने पिता श्री बाचा महाराज से मिली,पिता के अप्रत्याशित मृत्यु के पश्चात् श्री विक्कू जी मिश्र से प्राप्त की। आप तबला वादन से देश तथा विदेशों के सुप्रसिद्ध तबला वादकों में अग्रणी हो गये। इन्हें तबला का जादूगर भी कहा जाता था। आपके आकाशवाणी/दूरदर्शन के विशिष्ट कलाकार थे। इनके अनेकों ई0पी0एल0 पी0 कैसेट्स टोमोफोन रिकार्डिंग तथा दर्जनों चलचित्र मतें वादनकला की प्रभावशाली

प्रस्तुति ने लोगों के मन को जीत लिया। आपको भारत सरकार द्वारा पद्मश्री, तथा पद्मभूषण से अलंकृत किया गया। आपको अनेकों उपाधियाँ , प्रशस्तिपत्र, अभिनन्दन दिया गया। आपके वंश परम्परा में श्री कुमार लाल तथा कौशल प्रसाद तथा देश के कोने कोने में शिष्यों की एक लम्बी सूची है।

(36) पं0 किशन महाराज:

उच्चकोटि के तबला वादक पं0 किशन महाराज का जन्म काशी में सन् 1923ई0 में सुप्रसिद्ध तबला वादक पं0 हरिप्रसाद के ज्येष्ठ पुत्र के रूप में काशी में हुआ। आपको 'संगति सम्राट' ताल विलास पद्मश्री आदि अनेक उपाधियों से विभूषित किया गया। आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ठ तबलावादक पं0 किशन महाराज तबला की शिक्षा अपने बड़े पिता तबला शिरोमणि पं0 कण्ठे महाराज से प्राप्त की। गायन, वादन तथा नृत्य तीनों ही विधाओं में तबला संगति करके जनमानस में छा गये। बनारस बाज की विशुद्ध मौलिकता के साथ साथ लय पर आपका पूरा अधिकार है। देश तथा विदेशों में आपकी ख्याति देदीप्यमान है। भारत के सभी संगीत सम्मेलनों में आपका एकल तथा संगति का कार्यक्रम अत्यन्त सराहनीय रहा। आपके अनेक योग्य शिष्य देश विदेश में विशेष उल्लेखनीय हैं। आपके पुत्र श्री पूरण महाराज देश के अच्छे कलाकारों में गिने जाते हैं।

(37) पं0 हनुमान प्रसाद मिश्र:

विद्वान तथा श्रेष्ठ सारंगी वादक एवं गायक पं0 हनुमान प्रसाद मिश्र का जन्म काशी में सन् 1914 ई0 में श्रेष्ठ सारंगीवादक पं0 बड़े गणेश जी मिश्र के घराने में हुआ। अपने पिता पं0 सुरसहाय मिश्र से बचपन से ही सारंगीवादन की शिक्षा लिये। सन् 1938ई0 में पिता के स्वर्गवास हो जाने के बाद आप काशी सर्वोच्च गायक पं0 बड़े रामदास जी मिश्र के शिष्यत्व में राग-रागनियों गायन के विभिन्न शैलियों की शिक्षा प्राप्त कर

गायन तथा सारंगी वादन में विद्वान कलाकार हो गये। भारत के लब्ध प्रतिष्ठित कलाकारों के साथ आपका मनमोहक सारंगी संगत लोगों को यादगार बन गयी। आपके अनेकों देश विदेश में शिष्यों की श्रृंखला है। आपके अनुज लब्ध प्रतिष्ठित पं0 गोपाल मिश्र हुए तथा आपके पुत्र विलक्षण प्रतिभावान श्रेष्ठ गायक के रूप में पं0 राजन साजन मिश्र हैं। संगीत की सेवा करते हुए सन् 1999 ई0 में काशी में आपका स्वर्गवास हुआ।

(38) पं0 गोपाल मिश्रः

अद्वितीय सारंगी वादक पं0 गोपाल मिश्र का जन्म सन् 1920ई0 में काशी में हुआ। आपके पिता सुप्रसिद्ध सारंगीवादक पं0 सुरसहाय मिश्र के सान्निध्य में सारंगी की शिक्षा ग्रहण की। आपके बड़े भाई पं0 हनुमान प्रसाद मिश्र के मार्गनिर्देशन में सारंगी वादन की अनुपम शिक्षा हुई। आपके पिता ने काशी के गायनाचार्य पं0 बड़ेरामदास जी मिश्रा के चरणों में गोपाल जी को सौंप दिया। जहाँ इन्हें प्रचलित अप्रचिलत रागों, बन्दिशों तथा विभिन्न प्रकार की पूर्णलयकारियों का ज्ञान प्राप्त हआ। भारत के सर्वश्रेष्ठ सारंगीवादक पं0 गोपाल मिश्र सभी संगीत सम्मेलनों , लब्ध प्रतिष्ठित कलाकारों के गायन की सफल संगति करके काशी का नाम, उज्जवल किया आपको नेपाल नरेश तथा संगीत नाटक अकादमी से सम्मानित किया गया था। सन् 1977 में आपका दिल्ली में स्वर्गवास हुआ।

(39) श्रीमती सिद्धेश्वरी देवीः

रससिद्ध श्रेष्ठ गायिका श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी का जन्म संगीत परिवार में हुआ। संगीत की शिक्षा आपको पं0 सियाजी मिश्र सुमधुर सारंगीवादक से प्राप्त हुई इन्होंने गायन के विभिन्न शैलियों - ख्याल, टप्पा, ठुमरी, दादरा आदि की शिक्षा काशी के सर्वश्रेष्ठ गायक पं0 बड़े रामदास जी मिश्र से प्राप्त की। ध्रुवपद, ख्याल, टप्पा ठुमरी, कजरी, चैती आदि में भारतवर्ष में अपना श्रेष्ठ स्थान बनाया। भारत के विभिन्न संगीत

सम्मेलनों तथा आकाशवाणी के सर्वोच्च कलाकार के रूप में अपने सफल कार्यक्रमों को प्रस्तुत की। भारत सरकार ने श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी को पद्मश्री एवं राष्ट्रपति द्वारा संगीत नाटक अकादमी सम्मान से सम्मानित किया। शान्ति निकेतन द्वारा सर्वोच्च उपाधि 'देशिकोत्तम' से भी सम्मानित किया गया। युववस्था में अनेक फिल्मों में भी अभिनय और पार्श्वगायिका का कार्य किया। आपकी छोटी पुत्री श्रीमती सविता देवी देश की लोकप्रिय गायिका हैं। आपकी एक लम्बी शिष्य परम्परा है। श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी का निधन दिल्ली में सन् 1976 ई0 में स्वर्गवास हुआ।

(41) **श्रीमती रसूलन बाई:**

काशी की ठुमरी, दादरा, चैती आदि की रसीली गायिका श्रीमती रसूलन देवी ने भारत में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया। संगीत की शिक्षा उस्ताद शम्भू खाँ से हुई। आप आकाशवाणी की विशिष्ट श्रेणी की कलाकार थीं। भारत के भिन्न भिन्न संगीत सम्मेलनों में आपका उत्कृष्ट गायन लोगों को मोहित कर लेता था। देश के अतिरिक्त, नेपाल, अफगानिस्तान, पाकिस्तान में भी अपना कार्यक्रम दिया। रसूलन बाई इलाहाबाद में दिवंगत हुई।

(42) **पं0 महादेव प्रसाद मिश्र:**

काशी के विद्वान गायक पं0 महादेव मिश्र का जन्म सन् 1906ई0 में इलाहाबाद के शिवकोटि मन्दिर के प्रांगण में हुआ। कालान्तर में आप काशी में आ गये आपने तबला की शिक्षा काशी के विद्वान तबला वादक पं0 भैरव जी मिश्र से प्राप्त की तथा गायन की शिक्षा सर्वश्रेष्ठ गायक पं0 बड़े रामदास जी मिश्र से प्राप्त की। गायन में ध्रुवपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, होरी चैती आदि गायक के रूप में श्रेष्ठ कलाकार हो गये। आकाशवाणी के सर्वोच्च श्रेणी के कलाकार देश के विभिन्न संगीत सम्मेलनों में अपने कार्यक्रम प्रस्तुत

कर रसिक श्रोताओं को रसमग्न कर दिया। आपकी संगीत सेवाओं से उ0प्र0 संगीत नाटक अकादमी लखनऊ, आई0टी0सी0 संगीत अगादमी कलकत्ता, सुरसिंगार संसद बम्बइ से 'स्वर विलास' की उपाधि से सम्मानित किया गया। गायन तथा वादन क्षेत्र में आपके अनेकों शिष्य हैं जैसे- मिश्र बन्धु (अमरनाथ पशुपति नाथ) आपके पुत्र गणेश प्रसाद मिश्र, श्रीमती पूर्णिमा चौधरी, आदि। वायलिन वादन में डा0 एन0 राजन, सितार में शिवनाथ मिश्र बटुक मिश्र, तबला में अनगिनत उदीयमान कलाकार, शहनाई, बांसरी में अच्छे कलाकार हैं। सन् 1995 ई0 में काशी में ही आपका स्वर्गवास हुआ।

(43) श्रीमती गिरजा देवीः

काशी की संगीत क्षितिज की देदीप्यमान नक्षत्र, देश की सर्वाधिक लोकप्रिय गायिका श्रीमती गिरजा देवी का जन्म 1929ई0 में हुआ। इनके पिता श्री रामदास कुशल होरमोनियम वादक थे। गायन की शिक्षा काशी के विद्वान सारंगीवादक पं0 सरजू प्रसाद मिश्र से प्राप्त की। पन्द्रह वर्ष की ही आयु में ख्याल, टप्पा, ठुमरी, आदि की कुशल गायिका के रूप में स्थान बना लिया पं0 सरजू प्रसाद के निधन के बाद काशी के विद्वान गायक पं0 श्रीचन्द्र मिश्र से ख्याल , ठुमरी, टप्पा, आदि की शिक्षा ग्रहण करके देश के सभी सम्मेलनों में ख्याति अर्जित की। आप आकाशवाणी की विशिष्ट श्रेणी की कलाकार हैं। आपको भारत सरकार द्वारा 'पद्मश्री' तथा 'पद्मभूषण' के राष्ट्रीय अलंकरण से विभूषित किया गया। देश के सभी मान्य संगीत संस्थाओं द्वारा मानव उपाधिया तथा मध्य प्रदेश सरकार द्वारा तानसेन पुरस्कार, प्रशस्ति पत्र आदि से सम्मानित किया गया। श्री महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ द्वारा डी0लिट्0 की उपाधि दी गयी। काशी की गरिमा को बढ़ाते हुए आप विदेशों में भी कई स्थानों में कार्यक्रम दिये। देश की अनेकों ग्रामोफोन कम्पनियों ने आपके रिकार्ड्स , एल0पी0ई0पी0 कैसेट्स निर्मित कर आपकी गायन प्रतिभा

को सम्मान किया है। आपकी अनेकों शिष्यायें विशेष नाम अर्जित कर रही हैं। आप काशी की गायिकाओं की गौरव हैं।

(44) पं0 गणेश प्रसाद मिश्र:

सुप्रसिद्ध गायक प्र0 गणेश प्रसाद मिश्र काशी के संगीत परिवार पं0 बड़े रामदास जी की घराना के हैं। इनका जन्म सन् 1934 ई0 (आजमगढ़) ननिहाल में हुआ। आपके पिता पं0 बच्चन मिश्र गायन वादन के निष्णात कलाकार थे तथा शान्ति निकेतन के बहुत समय तक सेवा की। आप अपने दादा पं0 बड़े रामदास जी मिश्र से ध्रुवपद, धमार, ख्याल, टप्पा , ठुमरी आदि की शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात अच्छे गायक तथा अच्छे शिक्षक के रूप में ख्याति अर्जित की। आप आकाशवाणी/ दूरदर्शन के सर्वोच्च श्रेणी के गायक हैं। काशी की सम्मानित शिक्षा संस्था सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय में कण्ठ संगीत के विभागाध्यक्ष रहे तथा देश के सुप्रसिद्ध संस्था- भातखण्डे संगीत महाविद्यालय लखनऊ में कण्ठ संगीत के प्राध्यापक तथा बाद में आचार्य पद से अवकाश ग्रहण किये। आपने देश के विभिन्न समारोहों में अपना कुशल गायन प्रस्तुत किया है। अखिल भारतीय कार्यक्रमों में अनेकों बार आपने गायन प्रस्तुत की है। आपने हजारों नवीन बन्दिशों की भिन्न-भिन्न रागों तथा तालों में निर्माण किया है। आपके ज्येष्ठ पुत्र पं0 विद्याधन प्रसाद मिश्र अच्छे गायक हैं तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संगीत संकाय में गायन प्रवक्ता पद पर कार्यरत हैं साथ ही साथ आकाशवाणी/ दूददर्शन के अखिल भारतीय कार्यक्रमों में सुमधुर गायन प्रस्तुत किये हैं। आपके अनेकों शिष्य हैं जो काशी के गौरव को बढ़ा रहे हैं। जापान सरकार के आमंत्रण पर आप जापान गये थे। आपके गायन से प्रभावित होकर देश के अनेक राज्यपालों ने प्रशंसा की। आपको उ0प्र0 संगीत नाटक अकादमी लखनऊ द्वारा सम्मानित एवं पुरस्कृत किया। साथ ही संगीताचार्य 'संगीत आचार्य शिरोमणि' 'संगीत कलानिधि' से विभूषित किया गया है।

(45) **पं0 शारदा सहायः**

पं0 राम सहाय जी के वंश परम्परा के पं0 भगवती सहाय जी के तृतीय पुत्र पं0 शारदा सहाय हैं इनका जन्म काशी में 1935ई0 में हुआ। तबला की प्रारम्भिक शिक्षा पिता से प्राप्त हुई। बाद में तबला के मूर्धन्य वादक विद्वान पं0 कण्ठे महाराज से प्राप्त की। बनारस घराने के तबलावाज के अच्छे कलाकार के रूप में माने जाते हैं। सन् 1970 से आप अमेरिका, कनाडा आदि विश्वविद्यालयों अनेकों शिष्यों को बनारस घराने के तबला की शिक्षा दी। आपको विदेशी विश्वविद्यालय से पी0एच0डी0 की उपाधि मिली। देश के प्रमुख संगीत सम्मेलनों में तबला वादन में ख्याति अर्जित की है। इन्होंने 1965 ई0 में पं0 राम सहाय संगीत विद्यालय की वाराणसी में स्थापना की है। इस समय आप इंग्लैण्ड की डाटिंग्टन विश्वविद्यालय में अतिथि प्रोफेसर पद पर कार्यरत हैं। इंग्लैण्ड में पं0 राम सहाय संगीत विद्यालय की स्थापना करके गायन, वादन, नृत्य की भारतीय संगीत को प्रोत्साहित कर रहे हैं।

(46) **पं0 राजन साजन मिश्रः**

सर्वाधिक लोकप्रिय गायक युगल जोड़ी, युवागायक बन्धु राजन-साजन मिश्र का जन्म काशी में सुप्रसिद्ध सारंगी वादक एवं गायक पं0 हनुमान प्रसाद मिश्र के ज्येष्ठ पुत्र राजा मिश्र कनिष्ठ पुत्र साजन मिश्र का जन्म क्रमशः सन् 1951 ई0 तथा 1956 ई0 में हुआ। पिता से गायन शिक्षा तथा गायनाचार्य पं0 बड़े रामदास जी के शिष्यत्व में ग्रहण किया। काशी की इस युवा युगल जोड़ी ने अपने मनमोहक प्रभावशाली गायकी से सम्पूर्ण भारत के लोकप्रिय गायक हो गये। ख्याल गायकी में शीघ्र ही इस युगल जोड़ी का नाम हो गया। आप दिल्ली प्रवास के दौरान सम्पूर्ण भारत के संगीत सम्मेलनों तथा विदेश में अपने गायन का मनमोहक स्वरूप लोगों के चित्त को आकर्षित कर लिया।

आप लोग विशेषतः ख्याल, टप्पा, भजन, गाते हैं। आप लोगों ने सुरसंगम , चलचित्र में पार्श्वगायक के लोकप्रियता से लोगों के मन को मोहित कर लिया आप लोग आकाशवाणी/ दूरदर्शन के विशिष्ट श्रेणी के कलाकार हैं। आप लोगों के अनेकों कैसेट्स , सी0डी0 रिकार्ड हैं। काशी के गौरव को बढ़ा रहे हैं।

(47) श्री अमरनाथ श्री पशुपति नाथ मिश्रः

मिश्र बन्धु के नाम से प्रसिद्ध युगल गायक पं0 अमरनाथ मिश्र का जन्म काशी में सन् 1938 ई0 तथा पशुपति नाथ मिश्र का जन्म काशी में सन् 1941 ई0 में हुआ। अपने कठिन अभ्यास के द्वारा चौदह वर्ष के अनयु में युवा गायक के रूप में लोकप्रिय हो गये। आप लोगों ने संगीत की शिक्षा अपने चाचा पं0 महादेव मिश्र से प्राप्त किए। जो प्रसिद्ध गायनाचार्य पं0 बड़े रामदास के शिष्य थे। आप लोग ख्याल, टप्पा, ठुमरी आदि के रससिद्ध कलाकार के रूप में शीघ्र ही सम्पूर्ण भारत में लोकप्रिय हो गये। आकाशवाणी के प्रथम श्रेणी के कलाकार के नाते कई बार अखिल भारतीय कार्यक्रमों में भाग लिया। भारत के सभी मुख्य मुख्य नगरों के संगीत-सम्मेलनों में आप लोगों का सफल कार्यक्रम हुआ। अपने चाचा से शिक्षा प्राप्त कर गायनाचार्य पं0 बड़े रामदास मिश्र का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। ख्याल गायन में राग केर मीड तथा क्लिष्ट तानों का प्रयोग विशेष गायकी अंग था। ठुमरी गायन में आप लोग लोकप्रिय गायक हैं।

(48) श्रीमती बागेश्वरी देवीः

बिहार प्रान्त के मुंगेर नगर में जन्मी श्रीमती बागेश्वरी देवी काशी आ गयीं तथा काशी के गुणी गायक पं0 गणेश प्रसाद मिश्रा की शिष्यता ग्रहण कर बनारसी ठुमरी, दादरा, होली, कजली , चैती, आदि की देश प्रसिद्ध कलाकार हो गयीं। आकाशवाणी दूरदर्शन की प्रथम श्रेणी की कलाकार अनेकों बार अखिल भारतीय संगीत कार्यक्रम में

हुआ। आपके गायन से देश की सशक्त प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने भूरि भूरि प्रशंसा की। कालान्तर में आप खैरागढ़ के इन्दिरा कला विश्वविद्यालय में सम्मानित प्राध्यापक के पद पर कार्यरत रहीं। तथा सन् 1999 ई0 में वहीं इनका स्वर्गवास हो

(49) **पं0 जालपा प्रसाद मिश्र:**

श्री शिवदास प्रयाग जी के वंश परम्परा में जन्मे श्री जालपा प्रसाद मिश्र का जन्म काशी में सन् 1934 ई0 में हुआ। आपके पिताजी पं0 बैजनाथ मिश्र अच्छे सारंगी वादक थे। आपने गायन की शिक्षा काशी प्रसिद्ध गायनाचार्य पं0 बड़े रामदास जी से प्राप्त की। वर्तमान में काशी के चौमुखी प्रतिभा के गुणी गायक के रूप में आप विख्यात हुए। आप ध्रुवपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, दादरा , होली, भजनादि के उत्कृष्ट कलाकार हैं। आकाशवाणी कलाकार सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में प्रवक्ता पद पर गायन के विभागाध्यक्ष रहे। आपके अनेकों शिष्य हैं। आपका काशी में 11 अक्टूबर 2001 में स्वर्गवास हो गया।

(50) **पं0 रंगनाथ मिश्र:**

सुप्रसिद्ध तबला वादक पं0 रंगनाथ मिश्र का जन्म काशी के सुप्रसिद्ध पं0 दरगाही जी मिश्र के परिवार में सन् 1932 ई0 में हुआ। बारह वर्ष की अल्पायु में आप देश के विभिनन संगीत सम्मेलनों में सफल वाद तथा संगति, कार्य कर रहे हैं,गायन, वादन, तथा नृत्य के कुशल संगतकर्ता अपने विशिष्ट बनारस बाज के तबला वादन से प्रसिद्धि पाई। तबला शास्त्र तथा क्रियात्मक दोनों ही पक्षों के विद्वान, तबला, वादक भातखण्डे संगीत महाविद्यालय लखनऊ में प्राध्यापक तबला के पद से अवकाश ग्रहण किये। आकाशवाणी के विशिष्ट श्रेणी के कलाकार पं0 रंगनाथ जी ने बहुत से कार्यक्रम किये । आपके लखनऊ में अनगिनत शिष्यों को शिक्षा देकर काशी के गौरव को बढ़ाया है।

(ग) गायन परम्पराः

काशी में गायन परम्परा प्राचीन काल से निरन्तर चली आ रही है। इसकी प्राचीनता न केवल इतिहास ग्रन्थों, अपितु विविध शास्त्रीय प्रमाणों एवं अभिलेखों से सत्यापित है। देवालयों में गायन परम्परा सदियों से अवस्थित रही है। उत्तर प्रदेश के सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग ने उत्तर प्रदेश पत्रिका 'काशी अंक' 1984ई0 में प्रकाशित किया, जिसमें काशी के ऐतिहासिक सांस्कृतिक, धार्मिक एवं साहित्यिक विशेषता तथा संगीत, मूर्ति, चित्र आदि कलाओं के विविध रूपों एवं शैलियों पर परिचयात्मक तथा विवेचनात्मक निबन्ध विद्वान लेखों से संग्रहीत करके प्रकाशित किया। भारतीय संगीत शास्त्र के इतिहास वो लिखे गये, जिसमें काशी एवं काशी के कलाकारों की ससम्मान चर्चा की गयी, लेकिन काशी के अतिसमृद्ध संगीत कलाकारों एवं संगीत मर्मज्ञों को विषय बनाकर एक पृथक ग्रन्थ प्रस्तुत करने का प्रयास नहीं किया गया।

काशी में रससिद्ध कलाकारों के अतिरिक्त, सुयोग्य शिक्षक, शास्त्र पारंगत, सफलमान्य वाग्गेयकार, अनूठी बन्दिशों के रचनाकार, विश्वप्रसिद्ध कलाकार एवं युवापीढ़ी के मेधावी साधनारत कला साधकों का प्रवाह पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही है। काशी के कलाकारों का प्रमाणिक इतिहास पूर्ण रूप से नहीं प्राप्त है फिर भी सोलहवीं शताब्दी से तानसेन (तन्ना मिश्र) का वर्णन है।

काशी में तानसेन (तन्ना मिश्र) परम्पराः

डा0 सुशील कुमार चौबे द्वारा लिखित "हमारा आधुनिक संगीत" ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय में- काशी का संगीत सम्राट तानसेन एवं मूर्धन्य विद्वानों से किस प्रकार आत्मीय सम्बन्ध रहा । उत्तर प्रदेश ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाशित किया गया है।

लेखक के अनुसार तानसेन का जन्म स्थान काशी (बनारस) है। यही उनका बचपन बीता और पालन-पोषण हुआ। तानसेन के मकरन्द्र (कथक) कथावाचक थे।

जो काशी के मन्दिरों में पौराणिक कथाओं- गाथाओं को सस्वर गाकर सुनाया करते थे। तानसेन के बचपन का नाम तन्ना मिश्र था। उनकी प्रखर बुद्धि से प्रभावित होकर विलक्षण संगीत मनीषी स्वामी हरिदास जी ने अपना शिष्य बनाकर शीर्षस्थ श्रेष्ठ कलाकार बनाया जो मुगल सम्राट अकबर के नवरत्न हुए। इनके गायन से प्रभावित होकर अकबर बादशाह ने 'मिया तानसेन' की उपाधि दी। तानसेन की सम्मानित शिष्य परम्परा के उत्कृष्ट कलासाधकों का बनारस आना जाना लगा रहता था और वे सभी काशी को संगीत की केन्द्रीय स्थली मानते थे।

काशी में गायन परम्परा के विविध घराने:

घरानों की उत्पत्ति मुगल काल से ही शुरू हो गयी थी। काशी में गायन परम्परा के कलाकारों के अनेक घराने हुए, जो प्रमुख रूप से प्रचलन में चले आ रहे हैं तथं उनसे सम्बद्ध साधकों की साधना से उत्तरोत्तर विकसित होते रहे हैं।

गायन परम्परा के प्रमुख घराने:

(1) पियरी घराना:

इस घराने के प्रथम संगीत महापुरुष एवं प्रवर्तक के रूप में पं0 दिलाराम मिश्र हैं। जिनका काल सोलहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जा सकता है। इनके पूर्वज गोण्डा-बलरामपुर के महाधिपति एवं वैष्णव धर्म प्रचारक थे। मुगल सम्राट बाबर की विजयी उन्मत्त सेना ने न केवल आपके पूर्वजों के मठ को ध्वस्त किया अपितु वहाॅ के मठाधिपति को मौत के घाट उतार दिया। दु:खी पारिवारिक सदस्यों के साथ पं0 दिलाराम मिश्र अपने पाॅच भाइयों के साथ राधाबल्लभ सम्प्रदाय के विद्वान संगीतज्ञ श्री 108 हित हरिवंश जी से तीस पैतीस वर्षो तक संगीत की उत्कृष्ट शिक्षा ग्रहण की, जिसमें छन्द, प्रबंध, विष्णुपद, ध्रुवपद शैली आदि है। पं0 दिलाराम जी संगीत के प्रचार प्रसार के लिए काशी

आ गये । आपके दूसरे भाई पं0 चिन्तामणि मिश्र दिल्ली को अपना क्षेत्र बनाया। पं0 दिलाराम मिश्र से लेकर पं0 ठाकुर दयाल मिश्र तक आपके घराने में पूर्वजों से विरासत में प्राप्त प्राचीन छन्द, प्रबंध, विष्णुपद, ध्रुपद आदि गायन शैली की परम्परा प्रचलित थी। प्रसिद्ध-मनोहर मिश्र जैसे सुयोग्य वंशजों ने ध्रुवपद के अतिरिक्त ख्याल, टप्पा, होरी आदि गायन शैलियों को विकसित किया तथा अपना वर्चस्व स्थापित किया। अन्त में इसी घराने के पं0 ठाकुर प्रसाद मिश्र के नाती पं0 छोटे रामदास जी मिश्र प्रख्यात गायक हुए। पं0 दिलाराम मिश्र के वंश परम्परा में पं0 राम कुमार मिश्र, पं0 शिव सहाय मिश्र, पं0 राम सेवक मिश्र थे। इनके वंशज में श्री लक्ष्मी दास मिश्र संगीत के महापुरुष कहे जाते थे। इनका जन्म 1860 ई0 में काशी में हुआ। इनके परिवार में शिव सेवक मिश्र, पं0 राम सेवक मिश्र संगीत के उच्चकोटि के गायक थे। जो ध्रुवपद, धमार, ख्याल, टप्पा, होरी आदि समान रूप से गाते थे। इनकी शिष्य परम्परा अभी भी निर्वाध रूप से चली आ रही है।

(2) पं0 शिवदास - प्रयाग जी घराना:

इनके पिता श्री प्रहलाद मिश्र मूलतः बनारस मिर्जापुर की सीमा ग्राम गुतस खैरबराह के निवासी थे। आपकी संगीत शिक्षा मामा राम प्रसाद मिश्र से हुई। आपके पिता काशी में आकर बस गये। पं0 शिवदास प्रयाग जी काशी नरेश ईश्वरी नारायण के दरबारी कलावन्त मुहम्मद अली से भी संगीत शिक्षा ली थी तथा काशी नरेश के दरबारी गायक एवं नाजिर थे। गायन के उत्कृष्ट कलाकार होने के साथ ही शिवदास जी बीन, सितार, सरोद, सुरसिंगार आदि वाद्यों के कुशल विद्वान वादक भी थे। प्रयाग जी अनुपम संगीत शिक्षा से सुपुत्र श्री मिठाई लाल जी मिश्र अपने युग के अनुपम गायक थे। आप दोनों सहोदर भ्राता 'पियरी घराना' के वंशज श्री लक्ष्मीदास ,गोविन्द दास, केशवदास के

समकालीन गायक थे। पं0 शिवदास प्रयाग जी के घराने की वंश परम्परा एवं शिष्य परम्परा में गायन, बीन, सारंगी आदि के अनेक उत्कृष्ट कलाकार हुए, जिन्होंने आपके घराने की मर्यादा को अत्यन्त लोकप्रिय बनाया। इनके घराना के अन्तिम गायक श्री कमल मिश्र थे।

(3) श्री जयदीप जी - मूलतः ग्राम हरिहरपुर, आजमगढ़ के थे जो काशी आ बसे। गायन के सभी शैलियों के विद्वान नृत्यकला के अगाध विद्वान तथा विशेषतः बनारस अंग की ठुमरी गायन के रससिद्ध कलाकार थे। कबीर चौरा के कबीर मठ के पास रहते थे। ये शिवदास प्रयाग जी के समकालीन थे। भारत तथा नेपाल रियासतों में अपनी गायकी से लोगों को मंत्रमुग्ध करके बाद में जीवन पर्यन्त काशी में रहे। आपने कुशल गायक श्री मौजुद्दीन खाँ को ठुमरी शिक्षा द्वारा अपना प्रतिबिम्ब गायक बनाया। ठुमरी के एक विशेष घराने के रूप में प्रख्यात हुए।

(4) **श्री जयकरन मिश्रः**

बेतिया ध्रुवपद के निष्णात विद्वान, चारों बानियों के पूर्ण विद्वान गायक, बेतिया दरबार के मूर्धन्य ध्रुपदाचार्य श्री जयकरन जी काशी के कबीर चौरा मुहल्ले में आ बसे। आपके एक पुत्री से जिसका विवाह कबीर चौरा स्थित पं0 बड़े रामदास जी मिश्र से कर दी तथा अपने ध्रुवपद के धरोहर को पं0 बड़ेरामदास जी को दे दी। आपके शिष्यों में सुप्रसिद्ध ध्रुवपद गायक वेणीमाधव भट्ट तथा भोला नाथ भट्ट आदि ने अखिल भारतीय ख्याति अर्जित की।

(5) **श्री धन्नू जी - सबरू जीः**

बेतिया घराना के ध्रुवपद गायकी के निष्णात विद्वान थे। मूलतः बेतिया निवासी थे । कालान्तर में काशी आ गये। कबीर चौरा मुहल्ले के पास औगढ़नाथ तकिया के

समीप स्थायी रूप से रहने लगे। काशी के ख्याल, टप्पा, गायकी के अद्भुत गायक पं0 छोटे रामदास मिश्र को ध्रुवपद गायकी की शिक्षा दिये। पं0 छोटे रामदास जी के अनेकों शिष्य हैं।

(6) **श्री ठाकुर मिश्रः**

इनका जन्म काशी में 1848 ई0 में हुआ। आपकी गायन परम्परा पियरी घराने के मूर्धन्य विद्वान प्रसिद्ध जी मिश्र के ज्येष्ठ पुत्र श्री शिव सहाय मिश्र से हुआ। गायन में ख्याल, टप्पा के वाद्य में वीणा एवं सारंगी के उत्कृष्ट, विद्वान थे। आपने गायन में अपने नाती पं0 छोटे रामदास मिश्र तथा सारंगी में पं0 बैजनाथ मिश्र जो एक सुयोग्य कलाकार के रूप में प्रतिष्ठापित हुए।

काशी के उपर्युक्त गायन परम्परा के कुछ घराने लुप्त हो गये, लेकिर फिर भी गायन परम्परा को आधुनिक सर्वश्रेष्ठ गायक एवं नायक पं0 बड़े रामदास जी मिश्र के वंश परम्परा तथा शिष्य परम्परा, निरन्तर अबाध रूप से पुष्पित पल्लवित होती आ रही है जिसमें कई कलाकार देश-विदेश के मूर्धन्य गायक विद्वान हैं।

चतुर्थ-अध्याय

पं0 बड़े रामदास जी मिश्र:

(क) जीवन परिचय:

काशी के मूर्धन्य घरानेदार गायकों में हिन्दू - कुल- गौरव, अत्यन्त लोकिप्रय चारों पट की गायकी में सुदृढ़ , सुदक्ष, नियभिमानी, उदारमन, जीवन की अन्तिम समय तक माँ सरस्वती के आराधक, निर्व्यसन, रससिद्ध, सन्तगायक- नायक के रूप में संगीत इतिहास में पं0 बड़े रामदास मिश्र काशी की सर्वश्रेष्ठ विभूतियों में अग्रगण्य गायक के रूप में याद किये जाते रहे हैं और रहेंगे। आपका जन्म काशी में सम्वत् 1933, माघ कृष्ण षठतिला एकादशी, मंगलवार 23 जनवरी सन् 1877 ई0 को प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में एक संगीतज्ञ परिवार में हुआ था।

आपके पूर्वज राजस्थान के जयपुर रियासत में दरबारी गायक थे। मुगलों के आक्रमण के पश्चात पूर्वज श्री लच्छीराम जी मिश्र ग्राम-कुण्डा सुल्तानीपुर, जिला प्रतापगढ़ में आकर बस गये। साथ ही साथ अवध के नवाब के दरबारी गायक हो गये। बाद में काशी के पास रानी कुंवर देवी ने गायन सुनकर सारनाथ के पास बीस बीघा जमीन तथा कबीर चौरा में एक मकान देकर सम्मानित की, जिसके कारण समस्त परिवार काशी आ बसा। पं0 लच्छीराम जी के पुत्र जजाली मिश्र एवं उनके पुत्र श्री कुन्दन मिश्र अपने समय के प्रसिद्ध गायक थे। श्री कुन्दन मिश्र के दो पुत्रों में श्री यदुनन्दन मिश्र (ज्येष्ठ) श्री शिवनन्दन मिश्र (कनिष्ठ) थे। श्री शिवनन्दन जी को बहुत दिनों तक कोई सन्तान नहीं हुई। आप काशी के त्रिकालज्ञ संत स्वामी भास्करानन्द जी अनन्य भक्त थे। स्वामी जी को संगीत सुनाया करते थे। एक दिन स्वामी जी ने श्री शिवनन्दन जी के गायन से प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया, और कहा कि आपको अतिशय भाग्यशाली तथा संगीत जगत में अपार यशस्वी पुत्र प्राप्त होगा। स्वामी जी के आशीर्वाद से पं0 बड़े रामदास जी का जन्म हुआ। बचपन में पिता जी से संगीत की शिक्षा लेते रहे संगीत की उत्कृष्ट

शिक्षा के लिए आपके पिता इन्हें पियरी घराना (काशी) के सर्वश्रेष्ठ विद्वान गायक श्री शिव सहाय मिश्र के पास ले गये तथा शिक्षा देने का आग्रह किया। परन्तु रामदास जी के भव्य आकर्षक, सरल मुखाकृति को देखकर वृद्ध शिव सहाय जी ने अत्यन्त स्नेह से आपके सिर पर हाथ फेरकर आशीर्वाद दिया और कहा कि यह होनहार बालक है तथा स्वयं गाने लगेगा। इस वृद्धावस्था में मैं इस होनहार प्रतिभाशाली बालक को शिक्षा देने में असमर्थ हूँ। किन्तु मेरा आशीर्वाद एवं विश्वास है कि यह भविष्य में काशी का अत्यन्त नक्षत्री लोकप्रिय गायक की प्रतिष्ठा अर्जित करेगा।

श्री शिवसहाय मिश्र का आर्शीवाद लेकर आप अपने पिता से गाना सीखने लगे। तथा निरन्तर 18-20 घण्टा अभ्यास करके उदीयमान कलाकार के रूप में ख्याति अर्जित करने लगे। कालान्तर में लगभग 20 से 22 वर्ष के उम्र में इनका विवाह बेतियॉ घराने की ध्रुपद परम्परा के मूर्धन्य विद्वान गायक पं0 जयकरन मिश्र की पुत्री श्रीमती भाग्यवन्ती के साथ सम्पन्न हुआ तथा अपने ससुर श्री जयकरन मिश्र से इन्होंने 4-5 सौ ध्रुपद धम्मार की बेदिशें प्राप्त की। पं0 बड़े रामदास जी ध्रुवा, परमठा, प्रबंध, ध्रुपद-धम्मार, ख्याल टपख्याल, टप्पा, प्रबंध सरगम,तराना, ठुमरी, दादरा, भजन, होरी आदि के विद्वान कलाकार थे। अपनी निरन्तर कठोर साधना और परिश्रम से शीघ्र ही आप देश की प्रसिद्ध रियासतों, रजवाड़ों , नवाबों तथा जमींदारों के लोकप्रिय कलाकार हो गये। इनका नाम स्वामी भास्करानन्द जी के इच्छानुसार रखा गया था।

आपकी लोकप्रियता से प्रभावित होकर नेपाल नरेश ने आपको आमन्त्रित किया आपके गायन को सुनकर नेपाल नरेश सहित सभी जनता तथा दरबारी गायक लोग प्रभावित हुए। और नेपाल महाराज ने आपको अपने दरबार का विशिष्ट गायक नियुक्त किया। पटियारा रियासत के युवराज के विवाहोत्सव के उपलक्ष्य में आयोजित संगीत समारोह

में आपने अपनी मनमोहक विलक्षण गायकी से इस आयोजन में आमन्त्रित देश के विभिन्न रियासतों के गुणग्राही नरेशों को प्रभावित कर विशेष प्रसंशा प्राप्त की। लगभग 15 वर्षो तक आप नेपाल दरबार के राजगायक पद को सुशोभित किये। तथा वहाँ से आप काशी लौट आये यहीं से भारत के भिन्न-भिन्न रियासतों एवं संगीत समारोहों जैसे- रामपुर रियासत, अवध के नवाब, हैदराबाद रियासत तथा बहुत से राजाओं के रियासतों में विशेष सम्मान, यश और ख्याति अर्जित की। साथ ही साथ विराट संगीत समारोहों में उत्कृष्ट गायन प्रस्तुत कर ख्याति अर्जित की। एक बार नजीबाबाद के विराट संगीत समारोह में आपकी विलक्षण, प्रभावोत्पादक गायकी पर मुग्ध होकर संगीत के मूर्धन्य विभूति पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने भरी सभा में "हिन्दू जाति का झण्डा" तथा "संगीत दीपक" कहकर आपका विशेष अभिनन्दन एवं प्रशंसा की, और आजीवन के लिए आपके आत्मीय प्रशंसक हो गये।

जिस प्रकार आप काशी के चारों पट की गायकी में पूर्ण दक्ष विद्वान गायक थे। उसी प्रकार आपकी नायकी प्रतिभा भी विलक्षण थी। आप काशी के श्रेष्ठ वाग्गेयकार थे। आपके विषय में ऐसी किंवदन्ती प्रसिद्ध रही, कि एक दिन स्वप्न में बाबा विश्वनाथ ने आपको आदेश दिया, "कि स्वयं रचनाएँ कर ईश्वर को समप्रित करो"। आपने आराध्य देव को ध्यान और स्मरण करते हुए स्वयं निर्मित पदों को प्रचलित अप्रचलित अनेक रागों एवं तालों में अनेक उत्कृष्ट, एवं विद्वता पूर्ण, तथा चमत्कारी रचनायें बनायी जो संगीत जगत के लिए अमूल्य धरोहर है। आपके पदों में ईश्वर के प्रति पूर्ण आस्था, कोमलता, लालित्य एवं समर्पण भाव है। सभी पद भगवान के लिए भक्त के अटूट प्रेम एवं आस्था से परिपूर्ण, अश्लीलता रहित, मर्यादित शिष्ट साहित्यिक ज्ञान का परिचायक है। सभी पदों में 'रामदास के मोहन प्यारे अथवा रामदास के गोविन्द स्वामी" अवश्य जुड़ा है।

इन्होंने भिन्न-भिन्न रागों तथा तालों में ध्रुपद , धम्मार, ख्याल, तपख्याल, सादरा, तराना, चतुरंग, तिखट, ठुमरी-वादन आदि गायन शैलियों का निर्माण किया गया। आपकी बन्दिशें ताल आड़ापंज, सूत फाक, सवारी, फरोदस्त, झपताल, तिताल, एकताल, रुद्र ताल, मत्त ताल, लक्ष्मी ताल, कुम्भ ताल ब्रम्ह ताल आदि तालों में रचनाएँ मिलती हैं। आप कृष्ठ रागों और तालों को सहजता पूर्वक अपनी मनोमुग्धकारी गायकी से श्रोताओं कों मन्त्रमुग्ध कर देते थे। आप अपने युग के काशी के अद्वितीय रस सिद्ध कलाकार थे।

आपने सजातीय, विजातीय, ऊँच-नीच, निर्धन, धनी, सामान्य, विशेष आदि भेदभाव की मूढ़ता से कोसों दूर समाज के हर वर्ग के संगीत जिज्ञासु, होनहार, प्रतिभाशाली, सामान्य बालकों को संगीत शिक्षा बड़े प्यार से दिये जिसके कारण आपके शिष्य परम्परा में समाज के सभी वर्गो का प्रतिनिधित्व मिलता है , जो भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त के अतिरिक्त नेपाल आदि सुदूर जगहों में बसकर अपनी कला प्रतिभा से प्रतिष्ठा प्राप्त कर आपके सुयोग्य शिष्य होने का नाम सार्थक कर रहे हैं। आपके शिष्यों में अनेक सुप्रसिद्ध गायक-गायिकायें, सारंगी वादक, सितार वादक, सहनायी वादक, वायलीन वादक, तबला वादक आदि। सभी श्रेणी के अनेक सुप्रसिद्ध कलाकार संगीत जगत में काशी का गौरव बढ़ाकर विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की।

प्रमुख वंश परम्परागत एवं शिष्य परम्परागत शिष्यों की श्रृंखलाः

वंश परम्परागतः

श्री हरिशंकर मिश्र (भारतीय भद्रदु जी, उर्फ गणेश प्रसाद मिश्र (भान्जा), रामशंकर उर्फ प्रचण्ड देव (भतीजा), पं0 राम प्रसाद मिश्र (भतीजा) , पं0 गणेश प्रसाद मिश्र (पौत्र) जालपा प्रसाद मिश्र , पं0 विद्याधर प्रसाद मिश्र (प्रपौत्र) (नाती), राजेश्वर प्रसाद मिश्र (नाती) अमरनाथ पशुप्रति नाथ मिश्र (परनाती), पं0 गंगा प्रसाद मिश्र (दामाद)।

<u>शिष्य परम्परागत:</u>

पं0 रामसेवक मिश्र उर्फ सजीले जी, पं0 सुखदेव मिश्र, जी महादेव प्रसाद मिश्र, जी बद्री प्रसाद मिश्र , श्री धर्मनाथ मिश्र , श्री रामेश्वर प्रसाद मिश्र, श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी, पं0 हनुमान प्रसाद मिश्र, पं0 गोपाल प्रसाद मिश्र सुप्रसिद्ध सारंगी वादक, नन्द लाल जी सुप्रसिद्ध शहनाई वादक, सुप्रसिद्ध संतुर वादक , पं0 शिवकुमार शर्मा के पिता श्री उमादत्त शिर्मा (जम्मू), श्री रामु शास्त्री, सुप्रसिद्ध वायलित वादक, पं0 राजन-साजन मिश्र सुप्रसिद्ध गायक तथा उपरोक्त संगीतज्ञों के वंश परम्परागत एवं शिष्य परम्परागत शिष्यों की बहुत ही लम्बी सूची है। जो पं0 बड़े रामदास जी के घराना से जुड़ी हुई है। देश व्यापी ख्याति प्राप्त कलाकारों के अतिरिक्त अनगिनत सैकड़ों शिष्य प्रशिष्य देश के कोने-कोने में संगीत जगत की सेवा करते हुए अपने गुरू के नाम को अमर बना रहे हैं।

<u>व्यक्तित्व:</u>

पं0 बड़ें रामदास जी का व्यक्तित्व बहुत ही सुन्दर था। गौर वर्ण सुडौल पुष्ट शरीर व्यायाम, घुड़सवाली तथा लाठी और तलवार चलाने में दक्षता, कद लगभग 5 फुट 10 इंच था। राजा महाराजाओं के बीच में देखने में बहुत ही सुन्दर लगते थे। कामदार अचकन, चूड़ीदार पैजामा, और सेर पर हिरे पन्नों से जड़ित कलंगी जो कि शाफा के ऊपर चेहरे पर चारचॉ लगा देते थे। गले में सोने का तोड़ा और भिन्न-भिन्न नगों के अँगूठी पहनने के शौकीन थे। इनका हृदय बहुत ही उदार था। गरीबों साधु, संतों की तन-मन-धन से सेवा करते थे। अपने जीवन काल में निर्धन लोगों की लड़कियों की शादी में भरपूर आर्थिक मदद करते थे।

कृतित्वः

जिस प्रकार कठिन साधना और परिश्रम से अपने को संगीत के उच्च शिखर पर स्थापित किया था। उसी प्रकार जाति पाति के भेद को त्यागकर हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख,ईसाई के सभी वर्ग के लोगों को दिल खोलकर विद्या दान किये। जिनमें इनके बहुत से शिष्य देश प्रसिद्ध संगीतज्ञ हो गये। शिष्यों को गुरू शिष्य परम्परा के अनुसार भोजनादि अैर वस्त्र दिकर जीवनपर्यन्त शिक्षा दिये। जिस कार्यक्रम में ये जाते थे अपने ही तरह शिष्यों का भी पहनावा ओढ़ावा रखते थे। जिससे ऐसा प्रतीत होता था कि इनके साथ के शिष्यों का भी मैफिल में रौनक बढ़ जाता था, गायन में संगत करने के लिए छोटे से छोटे कलाकार और उच्च कोटि के बड़े से बड़े कलाकारों को समान आदर करते थे।

रोचक घटनाएँ:

(1) लगभग 65 वर्ष की आयु में बाबा विश्वनाथ के महंथ के समधी अहमदाबाद से वाराणसी आये और उन्होंने पंडित जी के गायन सुनने की इच्छा प्रगट की भगवान विश्वनाथ मन्दिर के महन्थ ने पण्डित जी को गायन सुनाने का आगह किया, और पंडित जी अपने सभी शिष्यों के साथ विश्वनाथ मन्दिर के सामने सुमधुर गायन से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। अहमदाबाद से आये महंथ जी ने पंडित जी से कहा कि ज्येष्ठ के महीने में गर्मी बहुत पड़ रही है यदि आप मल्हार सुनाकर गर्मी शान्त कर दें तो विशेष कृपा होगी। इस पर पंडित जी ने बाबा विश्वनाथ का ध्यान और आराधना करक राग मेघमल्हार गाने लगे, और कुछ ही छड़ों में जोरदार आँधी के साथ मूसलाधार वर्षा होने लगी। अहमदाबाद के महंथ बहुत ही प्रसन्न हुए और इनसे अहमदाबाद चलने

के लिए आग्रह किया, तथा यह भी कहा कि हमारे बहुत से शिष्यगण हैं कि जिससे आपको लाखों रूपया मिल सकता है। पंडित जी इनके आग्रह को अस्वीकार करते हुए कहा कि मैं अब जीवन पर्यन्त बाबा विश्वनाथ के दरबार को (काशी) छोड़कर कहीं अन्यत्र नहीं जाऊँगा।

(2) नजीबाबाद के विराट संगीत सम्मेलन में, जो कि वो सात दिनों का था। आपकी विलक्षण मुग्धकारी गायन को सुनकर संगीत के मूर्धन्य विद्वान पंडित विष्णु दिगम्बर ने भरी सभा में "हिन्दू जाति का झण्डा" तथा "हिन्दू जाति का दीपक" कहकर आपका विशेष अभिनन्दन किया, और आजीवन आपके आत्मीय प्रशंसक हो गये।

(3) संगीत मारतण्ड पं0 ओंकार नाथ ठाकुर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय स्थित संगीत महाविद्यालय के प्राचार्य पद पर नियुक्त होकर काशी आये। और अपने गुरू पं0 विष्णु दिगम्बर फलुष्कर से सुनी प्रसंशात्मक चर्चा की उत्सुकता से प्रभावित होकर पंडित बड़े रामदास से मिलने उनके निवास स्थान कबीर चौरा आये। और पंडित जी से मिलने उनके बैठके में बैठ गये, उस समय पंडित जी भगवत नाम के जप कर रहे थे जप पूर्ण होने पर पंडित ओंकार नाथ जी से परिचय हुआ । उनके सम्मान में बड़े रामदास जी ने राग तोड़ी में साढ़े तीन सप्तक की ऐसी विलक्षण तान मारी कि पंडित ओंकार नाथ जी आवाक हो गये और गदगद वाणी में बोले मैने जैसा आपके विषय में गुरू जी आदि विद्वानों से सुना था आज वैसा ही विलक्षण दर्शन एवं प्रत्यक्ष अनुभव मिला।" उस समय बड़े रामदास जी की आयु लगभग 70 वर्ष से ऊपर थी। पंडित जी ने कहा कि देश के महान लोकप्रिय विद्वान गायक के स्वागत में मैंने

एक नमूना पेश किया और वृद्धावस्था के कारण स्वागत के लिए मेरे पास और कुछ नहीं है। पं0 ओंकार नाथ ठाकुर जब तक काशी में रहे प्रत्येक महीने में दो तीन बार पं0 मिश्र से मिलने उनके आवास आते रहे।

(4) संगीत समारोह कलकत्ता में देश के ख्याति प्राप्त कलाकारों को उसके संयोजक लाला बाबु ने बुलाया था, पंडित जी के मनोमुग्धकारी चमत्कारिक और विद्वत्तापूर्ण गायन को सुनने के बाद उस्ताद बड़े गुलाम अली खॉ और उस्ताद अलाऊद्दीन खॉ ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की लगभग 3-4 घण्टा गायन प्रस्तुत करने के बाद उसके उपरांत के कार्यक्रम में भाग लेने वाले गायक और तंत्र वादकों ने अपना कार्यक्रम स्थगित कर दिया और कहा कि आज के कार्यक्रम का समापन पंडित जी के नाम पर है।

(5) कहीं भी कार्यक्रम में आते थे तो वहॉ के प्रसिद्ध मंदिर मस्जिद में धन और अन्न का अवश्य दान करते थे। साधु संतों के प्रति उनकी उदार भावना थी और खुले हृदय से उनकी सेवा सत्कार करते थे। संगीत साधना के दौरान मणिकर्णिका घाट और बाबा कीना राम का स्थल उनकी कर्मभूमि थी। जहॉ से उन्हें अदृश्य साधु संतों का आर्शीवाद प्राप्त हुआ। इस प्रकार सिद्ध स्थलों और साधु संतों के आशीर्वाद से इनके गायन में अलौकिक शक्ति और प्रकाश था।

महान सन्तः

पंडित बड़े रामदास जी उच्चकोटि के संगीतज्ञ के साथ-साथ महान संत संगीत गायक थे। वृद्धावस्था में भी आपकी सरल, स्वाभिमान, विनम्रता, भव्यमुखाकृति, भेद-भाव, जाति-पाति रहित संगीत समर्पित दिनचर्या, सभी के प्रति हृदय में आदर की भावना और उदारता आदि आपमतें कूट-कूट कर भरी थी। पंडित जी की गायकी और उनकी

नायिकी प्रतिभा अत्यन्त उच्चकोटि की थी, रागों की सूक्ष्म से सूक्ष्म जानकारी एवं शास्त्रीय मर्यादा के अन्तर्गत कठिन से कठिन तालों में विभिन्न लयकारियों को सहजतापूर्वक प्रस्तुत करने वाले आप काशी के तत्कालीन विद्वानों में विलक्षण विद्वान तथा लोकप्रिय गायक थे। आजीवन किसी भी प्रकार के दुव्यर्सन से अत्यन्त अछूते पूर्ण संयमित नियमित जीवन को संगीत आराधना में समर्पित कर बिना किसी प्रलोभन, स्वार्थ रहित, भेदभाव रहित, मुक्त हस्त से विद्या दान करने में तत्पर, अनुपम विद्वान संगीतज्ञ के रूप में आप हमेशा याद किये जाते रहेंगे। आपको संगीत सम्राट, संगीत भूषण, संगीतोपाध्याय, संगीताचार्य, गायनाचार्य, संगीत कलानिधि आदि अनेक सम्मानित उपाधियों से अलंकृत किया गया था।

ऐसे महान देश के मूर्धन्य संगीत रत्न, एवं काशी के गौरव, युग पुरुष विलक्षण संगीत नायक, गायक, सिद्ध, संत संगीतज्ञ, जी पं0 बड़े रामदास जी मिश्र 83 वर्ष की अवस्था में पूर्ण आयु प्राप्त करके ग्यारह जनवरी, सन् 1960ई0 को काशी में स्वर्गवासी हुए।

पं0 बड़े रामदास जी की वंश परम्परा

(ख) **पारिवारिक संस्कारः**

पं0 बड़े रामदास जी का जन्म एक उच्चकोटि के संगीतज्ञ परिवार में हुआ। जिसके कारण संगीत इन्हें विरासत में प्राप्त हुआ। इनके पूर्वज गायन कला में दक्षता प्राप्त किये थे, और गायन शैलियों में प्रबंधन, ध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पा, टपख्याल, होरी, चैती, कजरी, भजन आदि इनके परिवार में कुशलता से गाया जाता था। जिसके परिणाम स्वरूप इनके पूर्वज जयपुर दरबार में तथा अवध के नवाबों के दरबार में दरबारी गायक थे। गायन में पूर्ण महारत होने के कारण कालान्तर में महारानी कुँवर देवी द्वारा काशी में सारनाथ के पास बीस बिगहा जमीन और कबीर चौरा में एक मकान पारितोषिक के रूप में प्राप्त हुआ। तभी से इनके पितामह सपरिवार काशी में रहने लगे, इनके पिता और प्रपितामह हिन्दी, उर्दू, और फारसी के ज्ञाता थे। पं0 बड़े रामदास जी मिश्र को गायन के अतिरिक्त तबला का बहुत ही अच्छा परिवारिक संस्कार प्राप्त हुआ था। निरन्तर संगीत साधना में अत्यधिक व्यस्त होने के कारण ये विद्यालय की शिक्षा से वंचित रहे फिर भी अपने पिता द्वारा हिन्दी, संस्कृत, उर्दू तथा फारसी का बहुत ही अच्छा ज्ञान था। हिन्दू परिवार में होने के कारण इन्हें रायण, महाभारत का बहुत ही उच्चकोटि का ज्ञान था।

(ग) **शिक्षा-दीक्षाः**

पं0 बड़ें रामदास मिश्र किसी विद्यालय में शिक्षा नहीं प्राप्त हुई थी लेकिन संगीत की शिक्षा अपने पिता तथा ताऊ जी से प्राप्त हुआ। संगीत शिक्षा के लिए आपके पिता इन्हें 'पियरी घराना' के उस युग के सर्वश्रेष्ठ विद्वान गायक श्री शिवसहाय मिश्र (पुत्र प्रशुद्ध मिश्र) के पास ले गये, आपकी भव्य आकर्षक सरल मुखाकृति को देखकर वृद्ध शिवसहाय जी ने अत्यन्त स्नेह से आपके सर पर हाथ फेरते हुए आशीर्वाद दिया

और कहा, कि मैं इस होनहार प्रतिभाशाली बालक को शिक्षा देने में असमर्थ हूँ। "यह बालक भविष्य में काशी का अत्यन्त नक्षत्री लोकप्रिय गायक की प्रतिष्ठा अर्जित करेगा।" श्री शिव सहाय मिश्र का आशीर्वाद प्राप्त कर यह अपने पिता से संगीत शिक्षा प्राप्त करने लगे। और एक उदीयमान कलाकार के रूप में उनकी ख्याति बढ़ने लगी 20-22 वर्ष की उम्र में इनका विवाह 'बेतिया घराने' के ध्रुपद परम्परा के मूर्धन्य विद्वान गायक श्री जयकरन मिश्र की सुपुत्री से सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात श्री जयकरन मिश्र द्वारा लगभग 4-5 सौ ध्रुपद-धमार गायकी की शिक्षा मिली। इन्हें अपने पिता द्वारा हिन्दी साहित्य, उर्दू तथा फारसी का ज्ञान प्राप्त हुआ। इनके ताऊ जी पं0 यदुनन्दन मिश्र तथा ज्येष्ठ भ्राता पं0 पुरुषोत्तम मिश्र द्वारा तबले का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ।

(घ) **कुशल गायक एवं नायक के रूप में:**

नियमित 18-20 घण्टे साधना के पश्चात आप एक उच्चकोटि के गायक के रूप में विख्यात होने लगे। इस प्रकार की निरन्तर कठोर साधना और परिश्रम से शीघ्र ही आप देश की प्रसिद्ध रियासतों, रजवाड़ों, नवाबों, ताल्लुकेदारों, जमींदारों में चर्चित होने एवं निमंत्रित होने लगे। शनैः शनैः आप की लोकप्रियता से प्रभावित होकर नेपाल नरेश ने नेपाल आने का निमंत्रण दिया जिसे आप स्वीकार कर नेपाल पहुँचे दरबार में आपके गायन कार्यक्रम को सुनकर नेपाल नरेश तथा सभी दरबारी तथा कलाकार और आप नेपाल दरबार के विशिष्ट गायक नियुक्त किये गये। लगभग 15 वर्षों तक नेपाल रहने के पश्चात पटियारा रियासत के विशिष्ट कलाकार के रूप में दरबारी गायक रहे। इसके अतिरिक्त संगीत कला के पारखी नवाब रामपुर एवं अन्य रियासतों में भी सादर आमन्त्रित होकर बहुत समय तक रहे और विशेष सम्मान, यश , ख्याति प्राप्त कर पुनः काशी लौट आये। और समय-समय पर भिन्न भिन्न संगीत गोष्ठियों एवं संगीत

समारोहों में भाग लेने लगे। काशी प्रवास के समय आपने बहुत से शिष्यों को संगीत शिक्षा प्रदान किये जो कालान्तर में काशी के उच्चकोटि के कलाकारों के देश-विदेश में अपने को स्थापित किये जो पंडित जी की ख्याति को अक्षुण बनाये हुए हैं।

नायक के रूप में आपने अनेक रागों एवं तालों में अनेक उत्कृट, विद्वत्तापूर्ण, चमत्कारिक रचनाएँ बनायीं जो संगीत जगत की अमूल्य निधि है। आपके पदों में कोमलता, लालित्य, समर्पण, आदि भावों के साथ साथ ईश्वर के प्रति पूर्ण आस्था, जगत की नश्वरता, नाद ब्रम्ह की शाश्वतता के प्रति पूर्ण समर्पण आदि सुमेव प्रकट होता है। सभी पद भगवत्ता के लिए भक्त के अटूट प्रेम एवं आस्था से परिपूर्ण, अश्लीलता रहित, मर्यादित, शिष्ट, साहित्यिक ज्ञान के परिचायक हैं। अधिकतर पदों में 'रामदास के मोहन प्यारे अथवा 'रामदास के गोविन्द स्वामी" अवश्य जुड़ा है। आप अनेकों प्रचलित, अप्रचलित रागों और तालों में बड़ा ख्याल, छोटा ख्याल, टपख्याल, सादरा, चतुरंग,तिरवट, तराना, सरगम, प्रबंध, ठुमरी, दादरा आदि का सहस्त्रों बेदिशों का निर्माण कर अपने शिष्यों को शिक्षा प्रदान की पंडित जी अपने युग के अद्वितीय गायक और नायक के रूप में प्रसिद्ध हुए जिनकी रचनाएँ आज भी अमर हैं।

(ड.) उदार व्यक्तित्व:

पं0 बड़े रामदास जी अपने उत्कृष्ट शिक्षा और उदारता के लिए प्रसिद्ध थे। अपनी उदारता के फलस्वरूप सजातीय, विजातीय, ऊँच, नीच, निर्धन, धनी, सामान्य, विशेष आदि भेदभाव की मूढ़ता से कोसों दूर रहकर समाज के हर वर्ग के संगीत जिज्ञासु होनहार प्रतिभाशली सामान्य बालकों को खाना , कपड़ा, देकर प्यार से संगीत विद्या दान किये एवं संगीत शिक्षा दिये। जिसके कारण अनेक शिष्यों में समाज के हर वर्ग का प्रतिनिधित्व मिलता जो भारत वर्ष के प्रत्येक प्रान्त के अतिरिक्त नेपाल, पाकिस्तान, श्रीलंका आदि

सुदूर जगहों में बसकर अपनी कला प्रतिभा से प्रतिष्ठा प्राप्त कर आपके सुयोग्य शिष्य होने का नाम सार्थक कर रहे हैं।

चूँकि आप स्वामी भास्करानन्द जी के आर्शीवाद से पैदा हुए थे और उन्हीं के द्वारा आपका नामकरण रामदास हुआ था। इसलिए आप साधु सन्तों के महान भक्त थे साधु सन्तों को अन्न धन कपड़ा आदि सादर सहृदयता से भेंट करते थे जिसके कारण साधु सन्तों का आप पर आर्शीवाद था। अपने शिष्यों को बिना प्रलोभलन के उदार हृदय से संगीत शिक्षा देते रहे। कहीं भी काशी के अतिरिक्त कार्यक्रम प्रस्तुत करने के पश्चात वहाॅ के प्रसिद्ध मन्दिरों देवालयों और मस्जिदों में तथा वहाॅ के साधु नस्तों, मौलवियों को अन्न, धन, वस्त्र देकर नतमस्तक होते थे। जिनके आशीर्वाद के फलस्वरूप इनके गायन में मनोमुग्ध कारी शक्ति आ गयी।

पंचम-अध्याय

वंश परम्परागत गायकों का संक्षिप्त जीवन परिचय

पं0 हरिशंकर मिश्र:

यह आपके छोटे भाई पं0 श्याम सुन्दर मिश्र के सुपुत्र थे। इनका जन्म 13 सितम्बर 1917ई0 में काशी में हुआ। इनकी संगीत की शिक्षा पं0 बड़े रामदास जी, पिता श्री श्यामसुन्दर मिश्र, चाचा श्री राम शंकर मिश्र से हुई। 18-20 वर्ष की आयु में आप ध्रुपद, धम्मार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, आदि के विशिष्ट कलाकारों की श्रेणी में गिने जाने लगे। अपने बड़े पिता के साथ देश के विभिन्न नगरों एवं रियासतों के संगीत कार्यक्रमों में भाग लेकर अपनी विशिष्ट अलग पहचान बनाई। प्रचलित और अप्रचलित रागों में कठिन से कठिन तालों में विशिष्ठ बन्दिशों को सहजतापूर्वक गाने में आपको विशेष महारत हासिल थी। आपके विशेष लयकार तथा खण्डमेरु की लयकारी युक्त तानों की झड़ी लगाकर अपनी विद्वत्तापूर्ण चमत्कारी गायकी से श्रोताओं को चकित कर देते थे। आप देश के भिन्न-भिन्न रियासतों तथा नेपाल दरबार के उच्चकोटि के गायक थे, तत्कालीन गायक आपको आदर और सम्मान की दृष्टि से प्रसंशक थे। आप हिन्दुस्तान के सभी संगीत सम्मेलनों संगीत गोष्ठियों में अपना प्रभावशाली गायन प्रस्तुत किया। संगीत के मूर्धन्य कलाकार तबला, वादक, मृदंग वादक आपकी विशिष्ट लयकारियों से मुग्ध हो जाते थे.... वंश परम्परा युक्त घरानेदार चर्तुमुखी गायक के रूप में आप निःसन्देह काशी के महान संगीत विभूति रहे। 30 नवम्बर 1990 में संगीत जगत के महान कलाकार का सूर्यास्त हो गया।

श्री भद्दू जी उर्फ गणेश प्रसाद मिश्र (भान्जा):

इनका जन्म काशी के कबीर चौरा मुहल्ले में सन् 1900ई0 में हुआ था। आपने गायन की शिक्षा पं0 बड़े रामदास जी से प्राप्त की। गायन शैली में ध्रुपद, धमार,

होरी, टप्पा, टपख्याल, ख्याल, ठुमरी, दादरा आदि के लोकप्रिय विद्वान कलाकार थे। गायन के साथ-साथ तबला वादन एवं संगीत में निपुण कलाकार थे। भारत के अनेकों संगीत समारोहों में आपने गायन एवं तबला वादन के कार्यक्रम देकर जनता को मन्त्रमुग्ध कर दिया। कालान्तर में 8-10 वर्ष कलकत्ता में रहकर अनेकों शिष्यों को गायन एवं तबला वादन की शिक्षा दी और 1967 ई0 में काशी में दिवंगत हो गये।

रामशंकर उर्फ प्रचण्ड देव (भतीजा):

इनका जन्म लगभग 1902ई0 में हुआ, इन्होंने संगीत की शिक्षा अपने ताऊ पं0 बड़े रामदास जी तथा पिताजी श्री शिवसुन्दर मिश्र से प्राप्त हुई। आप ख्याल, टप्पा, ठुमरी आदि के तत्कालीन लोकप्रिय गायक हो गये, आप राजा माण्डा के रियासत में लगभग 10 वर्षों तक दरबारी गायक के रूप में रहे। तथा उसके बाद जमशेदपुर टाटा में 10-10 वर्ष रहकर अनेक लोगों को बनारस अंग के ख्याल, टप्पा , ठुमरी आदि की शिक्षा दी तथा वहाँ के श्रेष्ठ गायकों में माने जाते थे। लगभग 1975 में आपका देहावसान काशी में हुआ।

पं0 राम प्रसाद मिश्र उर्फ रामू जी (भतीजा):

आपका जन्म सन् 1901 ई0 में उत्तर प्रदेश के मझौली रियासत में हुआ। आपके पितामह श्री मथुरा मिश्र मझौली राज्य के दरबारी गायक थे। जिनके द्वारा इन्हें संगीत की शिक्षा प्राप्त हुई। बचपन में पिता श्री मनमोहन मिश्र की असामयिक मृत्यु के उपरान्त आपकाशी आ गये, तथा पं0 बड़े रामदास जी से विधिवत ख्याल, टप्पा, ठुमरी, दादरा, चैती आदि के शिक्षा प्राप्त किये। ठुमरी, दादरा, टप्पा, में आपका भारतवर्ष में शीघ्र ही सर्वोच्च स्थान प्राप्त हो गया। ठुमरी और टप्पा गायकी में आपका विशिष्ट स्थान था, आपको ठुमरी कलकत्ता के संगीत प्रेमियों द्वारा ठुमरी सम्राट की उपाधि से

विभूषित किया गया। आप द्वारा टप्पा और ठुमरी से प्रभावित होकर तत्कालीन भारत के श्रेष्ठ गायिका श्रीमती 'केसर बाई केरकर' ने आपसे ठुमरी, टप्पा की शिक्षा प्राप्त की। देश की उच्चकोटि के गायक उस्ताद फैयाज खॉ, बड़े गुलाम अली खॉ, पं0 ओंकार नाथ ठाकुर, विनायक राव , पटवर्धन, श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी आदि आपके अत्यन्त पंशसक हुए। आपकी गायकी में कठिन से कठिन तानों एवं लयकारियों का मिश्रण था। काशी हिन्दू विश्विविद्यालय के संगीत कला संकाय द्वारा आपको विशेष प्राध्यापक नियुक्त किया गया, जहॉ, प्रो0 एम0आर0 गौतम ने आपसे टप्पा और ठुमरी की शिक्षा ली, आपका देहावसान बिहार के गया जिले में 1980ई0 में हुआ।

पं0 गणेश प्रसाद मिश्र (पौत्र):

आपका जन्म सन् 1934ई0 में ग्राम हरिहरपुर जिला आजमगढ़ अपने ननिहाल में हुआ। आपकी संगीत शिक्षा बचपन में पिता श्री बच्चन मिश्र से प्राप्त हुई। 11 वर्ष की आयु में अपने पितामह पं0 बड़े रामदास जी मिश्र से संगीत शिक्षा प्राप्त की, निरन्तर अभ्यास एवं लगन से काशी के उदीयमान कलाकारों में आपका सर्वोच्च नामों की गणना हो गयी। स्नातक स्तर के शैक्षणिक शिक्षा के साथ ही आप संगीत प्रवीण में उच्च स्थान अर्जित किया। आप आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के सर्वोच्च स्थान के लोकप्रिय गायक हैं। काशी के सम्मानित शिक्षा संस्था सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में लगभग 12 वर्षो तक विभागाध्यक्ष रहे तथा 1970 में भातखण्डे संगीत महाविद्यालय लखनऊ के कण्ठ संगीत के वरिष्ठ विभागाध्यक्ष के पद पर आसीन रहते हुए भारत के सभी संगीत सम्मेलनों में भाग लिए। तथा आप विदेशों में भी जापान , श्रीलंका, नेपाल आदि में संगीत कार्यक्रम दिये। लगभग 20 वर्षो तक सेवा किये तथा प्रधानाचार्य पद पर कार्य करते हुए सेवा निवृत्त हुए। आपके शिष्यों की एक लम्बी सूची है जो देश विदेश में संगीत

में उच्च श्रेणी के कलाकार एवं शिक्षक हैं। संगीत के क्रिया पक्ष एवं शास्त्र पक्ष दोनों आप के आप विद्वान कलाकार हैं। आप द्वारा रचित अनेक प्रचलित एवं अप्रचलित रचनायें भिन्न-भिन्न तालों में तथा रागों में गाये जा रहे है। आप ध्रुपद-धमर, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, दादरा, भजन आदि के चतुर्मुखी एवं श्रेष्ठ गायक हैं। अभी भी दैनिक क्रम का नित्य अभ्यास एवं शिष्यों को शिक्षा प्रदान कर रहे हैं।

श्री जालपा प्रसाद मिश्र (नाती):

पं0 बड़े रामदास जी मिश्र के एक मात्र नाती श्री जालपा प्रसाद मिश्र का जन्म काशी में सन् 1934ई0 में हुआ। आपकी संगीत शिक्षा अपने नाना पं0 बड़े रामदास जी मिश्र से प्राप्त हुई। आप ध्रुपद-धमार, ठुमरी-दादरा, ख्याल, टप्पा, चैती आदि के श्रेष्ठ कलाकार थे। तथा आकाशवाणी इलाहाबाद और वाराणसी के कलाकार थे। 1970 ई0 से आप सम्पूर्णानन्द संस्कृत महाविद्यालय में वाराणसी में गायन विभागाध्यक्ष पद से सन् 1995 में सेवानिवृत्त हुए। काशी में आपके अनेकों योग्य शिष्यगण हैं। 10 अक्टूबर 2001 में आपका काशी में स्वर्गवास हो गया।

पं0 विद्याधर प्रसाद मिश्र (प्रपौत्र):

पं0 बड़े रामदास जी मिश्र घराना में उत्पन्न पं0 विद्याधर प्रसाद मिश्र देश के कलाकारों में अपना नाम उज्ज्वल कर रहे हैं। आपका जन्म सन् 1960 ई0 में वाराणसी में हुआ। प्रारम्भिक गायन की शिक्षा अपने पितामह पं0 हरिशंकर मिश्र (भतीजा) पं0 बड़े रामदास जी मिश्र) से प्राप्त की तथा अपने पिता मूर्धन्य गायक एवं शास्त्रविद् पं0 गणेश प्रसाद मिश्र से प्राप्त कर रहे हैं। आप ख्याल, टप्पा, तराना, ठुमरी, आदि के कुशल गायक हैं, आकाशवाणी तथा दूरदर्शन के अनेकों अखिल भारतीय संगीत कार्यक्रमों में भाग ले चुके हैं। देश के प्रमुख संगीत सम्मेलनों में आपका सफल कार्यक्रम प्रसंशनीय

है। 20 वर्ष की अल्पायु में 'सूर सिंगार सम्पद' बम्बई द्वारा आपको 'सूरमणि' की उपाधि से आपको सम्मानित किया गया तथा संगीत प्रवीण की परीक्षा में स्वर्ण पदक प्रदान किया गया, वर्तमान में आप इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संगीत संकाय में गायन प्रवक्ता पद पर कार्य कर रहे हैं। आपके अनेकों शिष्य आकाशवाणी, दूरदर्शन के योग्य कलाकार हैं।

पं0 राजेश्वर प्रसाद मिश्र (नाती):

काशी के लोकप्रिय संगीत विभूति पं0 बड़े रामदास मिश्र के आप नाती हैं। आपका जन्म सन् 1947 ई0 में काशी के कबीर चौक मुहल्ले में हुआ। आपकी संगीत शिक्षा पं0 बड़े रामदास जी मिश्र, पं0 हरिशंकर मिश्र तथा पं0 गणेश प्रसाद मिश्र द्वारा प्राप्त हुई। ख्याल, ठुमरी, दादरा, होरी आदि के आप कुशल गायक हैं तथा आकाशवाणी इलाहाबाद वाराणसी के निवृत्त कलाकार हैं। आप विगत 30 वर्षो से 'वसंत कालेज राजघाट वाराणसी' में संगीत प्रवक्ता पद पर कार्य कर रहे हैं। भारत के कई संगीत सम्मेलनों में आप कार्यक्रम प्रस्तुत कर रहे हैं।

पं0 अमरनाथ पशुपति नाथ मिश्र (परनाती):

मिश्र बन्धु के नाम से विख्यात श्री अमरनाथ एवं पशुपति नाथ मिश्र पं0 बड़े रामदास जी के परनाती हैं। इन्होंने संगीत की शिक्षा पं0 महादेव मिश्र (शिष्य बड़े रामदास जी मिश्र) द्वारा प्राप्त की। आप भारत वर्ष के अनेकों संगीत सम्मेलनों में 14 वर्ष की अल्पायु से संगीत कार्यक्रम देकर गौरव प्राप्त किया। आप आकाशवाणी तथा दूरदर्शन के ए ग्रेड के कलाकार हैं तथा अनेकों बार अखिल भारतीय संगीत सम्मेलनों में भाग ले चुके हैं। मिश्र बन्धु के नाम से विख्यात आप भारत के सभी संगीत सम्मेलनों में भाग लेकर काशी को गौरवान्वित किया है तथा आपके अनेकों शिष्य काशी में आपसे संगीत शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

श्री गंगा प्रसाद मिश्र (दामाद):

मिर्जापुर निवासी पं० गंगा प्रसाद मिश्र बचपन में काशी में आ गये और पं० बड़े रामदास जी मिश्र से विधिवत गायन की शिक्षा प्राप्त करने लगे तथा साथ ही साथ घरानेदार सारंगी वादक के फलस्वरूप आप गायन तथा सारंगी - दोनों विधाओं में संगीत के अच्छे विद्वान हो गये। तत्कालीन भारतवर्ष के सभी प्रमुख गायक एवं गायिकाओं के साथ सारंगी संगत कर प्रशंसा अर्जित की।

शिष्य परम्परागत गायकों का संक्षिप्त जीवन परिचय:

श्री रामसेवक मिश्र उर्फ (सजीले जी) :

आपका जन्म सन् 1892ई० में काशी राज अन्तर्गत रामनगर राज्य में एक संगीत परिवार में हुआ। बचपन में आपके पिता के स्वर्गवास होने के कारण आपको ध्रुपद-धम्मार की शिक्षा श्री जैकरन मिश्र तथा ख्याल टपख्याल तराना होरी आदि की शिक्षा काशी के गाचनाचार्य पं० बड़े रामदास जी से प्राप्त हुआ। बाल्यकाल से ही रामसेवक जी की काव्य प्रतिभा विलक्षण थी। आपकी रचनाओं में ध्रुपद-धम्मार, ख्याल, होरी ठुमरी, दादरा, चैती, कजरी आदि का अद्भुत सन्निवेश है। "सजीले सुधा" नामक पुस्तक में आपके पदों का संकलन है।

कुशल रचनाकार एवं गायक के साथ-साथ आपसे रामचरितमानस ग्रन्थ के अत्यन्त विद्वान एवं सरस वक्ता थे। आपका कण्ठ अत्यन्त मधुर था, आप हारमोनियम तबला दोनों का प्रयोग मानस प्रवचन में करते थे। आप कुशल गायक के साथ ही साथ रामचरित मानस के विद्वान थे।

काशी के संगीतज्ञों के परम्परा में आपका बड़ा आदर था। सन् 1969 में काशी राज अन्तर्गत रामनगर राज्य में आपका ध्यावसान हुआ।

पं0 सुखदेव मिश्रः

काशी के गायन एवं नृत्य कला के सुप्रसिद्ध विद्वान अर्थात् श्री सुखदेव मिश्र मूलतः जौनपुर के निवासी थे। आपने गायन की शिक्षा गायनाचार्य पं0 बड़े रामदास जी मिश्र से प्राप्त की तथा नृत्य की शिक्षा लखनऊ घराने के सुप्रसिद्ध नर्तक श्री अक्षन महराज, लच्छू महाराज , श्री शम्भु महाराज जी से प्राप्त की। आप ध्रुपद-धमार, ख्याल टप्पा ठुमरी समान अधिकार से प्रस्तुत करते थे। काशी में नृत्य में आपने स्वतः ही घराना स्थापित कर लिया और अनेकों शिष्य को नृत्य और गायन की शिक्षा दी, आपके प्रतिभाशाली शिष्यों में आपकी पुत्री अलखनन्दा, तारा, सितारा, तथा पुत्र चतुर्भुज चौबे, नाती श्री गोपी कृष्ण देश विदेशों में अपनी ख्याति अर्जित की। आप वाद्यों में शारंदा, जलतरंग, तबला और सरोद के विद्वान वादक थे। आपके शिष्यों में गोपी कृष्ण जो फिल्म के कलाकार थे काशी के गौरव को बढ़ाया। आप पूर्ण आयु प्राप्त कर लगभग 1965 में काशी में ही दिवंगत हुए।

पं0 महादेव प्रसाद मिश्रः

काशी के लोकप्रिय विद्वान गायक श्री महादेव प्रसाद मिश्र का जन्म इलाहाबाद में हुआ। 7 वर्ष की आयु में आपका परिवार काशी के रामापुरा मुहल्ले में आ गया। गायन की शिक्षा काशी के चर्तुमुखी विद्वान पं0 बड़ेरामदास से प्राप्त की। साथ ही साथ तबला की शिक्षा विद्वान तबला वादक श्री भैरव जी मिश्र से प्रापत किया लगभग 17 वर्ष की आयु में आप अच्छे गायक एवं तबलावादक के रूप में प्रसिद्ध होने लगे गायन में ख्याल, ध्रुपद-धमार, ठुमरी, टप्पा, होरी-चैती, भजन आदि की शिक्षा ली। आप काशी

के अतिरिक्त पूरे भारत में विख्यात गायक हो गये, वृद्धावस्था में आपको देश व्यापी ख्याति मिली। सांस्कृतिक संस्थाओं एवं संगीत समारोहों तथा आकाशवाणी दूरदर्शन के उच्चश्रेणी के कलाकार थे। 1977 में आपको उ0प्र0 संगीत नाटक अकादमी एवार्ड केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी एवार्ड सन् 1984 सूर श्रृंगार संसद बम्बई से स्वर विलास की उपाधि तथा गोपाल मिश्र संगीत अकादमी वाराणसी सन् 1984 में काशी के नवरत्न की उपाधि से विशेष सम्मान प्रदान किया गया। आपके शिष्यों में गायन में भतीजे अमरनाथ-पशुपति नाथ (मिश्र बन्धु) श्री पूर्णिमा चौधरी, ममता सेन गुप्ता, शहनाई एवं बाँसुरी वादन क्षेत्र में श्याम लाल, दुर्गालाल, विष्णु प्रसन्न, अनन्त लाल, कृष्णा राम, भोला नाथ आदि हैं। तबला वादन क्षेत्र में आनन्द गोपाल वनर्जी, मारकण्डे प्रसाद मिश्र, ईश्वर लाल, कुमार लाल, कुबेर नाथ आदि। वायलिन वादन में डा0 एन0 राजम्- संगीता राजम्, सितार में शिवनाथ, बटुक नाथ आदि उपरोक्त सभी शिष्य देश के मूर्धन्य कलाकारों में गिने जाते हैं। आपके एक मात्र पुत्र गणेश प्रसाद मिश्र तबला और गायन के उदीयमान कलाकार थे। आपका स्वर्गवास काशी में सन् 1995 में हुआ।

पं0 बद्री प्रसाद मिश्र:

आप पं0 महादेव प्रसाद मिश्र के ज्येष्ठ पुत्र भ्राता थे,गायन की शिक्षा गायनाचार्य पं0 बड़े रामदास जी मिश्र से प्राप्त कर ध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी , चैती, होरी भजन आदि के चतुर्मुख गायक थे। इनका अधिकतर समय काशी में ही व्यतीत हुआ। और काशी के देवालयों के प्रमुख गायक थे। भगवान की भक्ति और पूजा पाठ में आपका समय अधिक व्यतीत होता था। आपके पुत्र अमरनाथ पशुपतिनाथ देश के कुशल गायक हैं तथा आपके कनिष्ठ पुत्र शिवनाथ मिश्र एक अच्छे सितार वादक हैं।

श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी:

आप काशी के प्रमुख गायिका में अग्रणी थीं, आपने गायन की शिक्षा काशी के गायनाचार्य पं0 बड़े रामदास जी मिश्र से प्राप्त की आप चारो पट की गायिका थीं। जिसमें धुपद धम्मार ख्याल टप्पा ठुमरी दादरा होरी चैती भजन आदि की पूर्ण पारंगत गायिका थीं। बनारस अंग की ठुमरी, टप्पा, दादरा, चैती, होली, कजली आदि की सशक्त हस्ताक्षर सिद्धेश्वरी देवी पूरे देश की सुप्रतिष्ठित संगीत प्रेमी रियासतों से लेकर आकाशवाणी केन्द्रों तथा जन सामान्य तक की लोकप्रिय गायिका रहीं। देश के विभिन्न संगीत सम्मेलनों, गोष्ठियों एवं आकाशवाणी की लोकप्रिय कलाकार थीं। भारत के अतिरिक्त आप नेपाल अफगानिस्तान इंग्लैण्ड आदि देशों के सरकार आमंत्रण पर अपना प्रभावशाली उत्कृष्ट कार्यक्रम प्रस्तुत किया। तत्कालीन भारत के सभी प्रमुख कलाकार आपके प्रसंशक थे। राष्ट्रपति द्वारा आपको पद्मश्री सम्मान से विभूषित किया। देश के अन्य संस्थानों द्वारा भी जैसे केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी विश्वभारती की सर्वोच्च उपाधि 'देशिकोत्तम' और भारतीय कला केन्द्र दिल्ली द्वारा सम्मानित की गयी। आपके अनेकों शिष्य एवं शिष्याएँ हैं। आपकी कनिष्ठ पुत्र श्रीमती सविता देवी देश की जानी मानी कलाकारों में गिनी जाती हैं। इनका देहावसान दिल्ली में 1976 में हुआ।

पं0 हनुमान प्रसाद मिश्र:

भारत वर्ष के सर्वोच्च एवं सुप्रसिद्ध सारंगी वादक पं0 गोपाल मिश्र का जन्म 1920ई0 में कबीर चौरा मुहल्ले में हुआ अपने पिता पं0 सुर सहाय मिश्र द्वारा सारंगी की शिक्षा प्रारम्भ हुई तथा कुछ ही समय के उपरांत आपके पिता ने पं0 बड़े रामदास जी मिश्र के चरणों में आपको सौंप दिया, आपकी कुशाग्रता स्मरण शक्ति एवं संगीत विद्या की ग्रहण शक्ति देखकर गायनाचार्य जी ने आपको प्रचलित अप्रचलित रागों, तालों

की शिक्षा प्रदान की लगभग 20 वर्ष की उम्र से ही आप कुशल सारंगी वादक के रूप में पहचाने जाने लगे। विलक्षण प्रतिभा के धनी पं0 गोपाल देश के सर्वोच्च सारंगी वादक के रूप में पहचाने जाने लगे। भारतवर्ष के सभी मूर्धन्य गायक और गायिकाओं के साथ आपका सारंगी संगति उच्च कोटि का रहा, देश के स्वतंत्र सारंगी वादकों में अपनी विद्वतापूर्ण वादन शैली सुरीलेपन, तैयारी, लयकारी, सफाई, सहजोरी, अद्भुत सूझ-बूझ युक्त विशिष्ट उपजों के लिए, कमानी एवं अंगुलियों के उचित समन्वय के धनी वादक के रूप में पं0 गोपाल मिश्र सुप्रसिद्ध थे। आप देश एवं विदेशों में भी विख्यात सारंगी वादक हो गये। जनवरी 1977 में दिल्ली में आपका देहावसान हुआ।

श्री नन्द लाल जी:

अपने युग के सर्वाधिक लोकप्रिय सुप्रसिद्ध एवं सुमधुर शहनाई वादक श्री नन्द लाल जी का जन्म काशी के भेलूपुर मुहल्ले में सन् 1896ई0 में हुआ। आपके पिता और पितामह अपने समय के जाने माने शहनाई वादक रहे जिसके कारण बचपन में आपकी शिक्षा अपने पिता जी सुद्धुराम से प्राप्त हुई तत्पश्चात काशी के प्रसिद्ध गायनाचार्य पं0 बड़े रामदास जी मिश्र प्रचलित अप्रचलित रागों की बन्दिशें एवं लयकारियों का ज्ञान प्राप्त हुआ आप काशी नरेश के दरबार के कुशल शहनाई वादक थे। आपके वादन शैली में धुपद, ख्याल, ठुमरी, चैती, होरी आदि सभी शैलियों का विशेष अधिकार रहा। युवावस्था आते आते आप काशी के उच्चकोटि के शहनाई वादक हो गये। देश के प्रमुख गीत सम्मेलनों एवं आकाशवाणी के उच्चकोटि के कलाकार थे। आपके अनेकों 'स्टूडियों रिकार्ड' आकाशवाणी संग्रहालय में सुरक्षित हैं। लगभग 75 वर्ष की आयु में आप काशी में दिवंगत हुए।

पं0 शिवकुमार शर्मा के पिता पं0 उमादत्त शर्मा

सन्तूर वादन में भारतवर्ष के सर्वोच्च स्थान प्राप्त पं0 शिवकुमार शर्मा के पिता पं0 उमादत्त शर्मा काशी के गायनाचार्य पं0 बड़े रामदास जी मिश्र से गायन की शिक्षा ली थी। अपने पिता से गायन एवं तबला की शिक्षा प्राप्त कर आपका झुकाव कश्मीरी वाद्य सन्तूर की तरफ अत्यधिक प्रभावित हुआ। आपके पिताश्री पं0 उमादत्त शर्मा ने इस लोक संगीत वाद्य को अपने चिन्तन, मनन से पर्याप्त सुधार करके और आलाप जोड़, झाला, गतकारी आदि का समावेश करके इस वाद्य को शास्त्रीय संगीत की परिधि में प्रतिष्ठापित किया। पिता के मार्गदर्शन में पं0 शिवकुमार शर्मा ने कठोर साधना द्वारा असाधारण महारत प्राप्त कर ली। इस अप्रतिम मधुर वाद्य का अनुपम वाद्य होने को अभूतपूर्व गौरव स्वीकार कर देश विदेश में इस वाद्य को अत्यधिक लोकप्रियता दिलाई।

श्री रामु शास्त्री:

सुप्रसिद्ध वायलिन वादक श्री रामु शास्त्रीय संगीत मनीषी (विद्वान) पं0 बड़े रामदास जी मिश्र से अनेक वर्षो तक विधिवत संगीत शिक्षा ग्रहण की। इसके अन्तर्गत वायलित में गायकी अंग के प्रचलित अप्रचलित रागों की बन्दिशों,आलापचारी तथा कठिन से कठिन तानों का अभ्यास करके अपने वायलिन वादन में चार चॉद लगा दिया। आप देश के सभी संगीत समारोहों में कुशल वादन करके लोकप्रियता प्राप्त की श्री रामु शास्त्री ने संगीत के 'स्नातकोत्तर एवं 'बीम्यूज' परीक्षा ससम्मान उत्तीर्ण की । वर्तमान में आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में संगीत कला संकाय में प्राध्यापक वायलिन पद पर कार्य कर रहे हैं।

पं0 राजन-साजन मिश्र:

वर्तमान समय में सर्वाधिक लोकप्रिय गायक युगल जोड़ी के नाम से प्रसिद्ध युवा गायक श्री राजन-साजन मिश्र सुप्रसिद्ध सारंगी वादक श्री हनुमान प्रसाद मिश्र ज्येष्ठ

पुत्र राजन मिश्र, कनिष्ठ पुत्र साजन मिश्र का जन्म सन् 1951ई0 एवं सन् 1956 ई0 में काशी में हुआ। गायन के तरफ विशेष रुचि के कारण युगल भ्राता गायनाचार्य पं0 बड़े रामदास जी मिश्र का शिष्यत्व ग्रहण किया। बाल्यकाल से ही कुशल संगीत शिक्षा, पारिवारिक संगीतमय वातावरण ख्याल, टप्पा, ठुमरी, दादरा, गायकी के नियमित साधना के कारण आप देश, विदेश के अग्रणी युगल जोड़ी गायक के नाम से प्रसिद्ध है। विरासत में प्राप्त संगीत शिक्षा घरानेदार बन्दिशों की मनमोहक प्रस्तुतीकरण शास्त्रीय मर्यादा के अन्तर्गत राग,ताल, स्वर,लय, रस, छन्द, भाषा, साहित्य तथा मनमोहक ख्याल गायन शैली के फलस्वरूप अप्रतिष्ठित कलाकार है। काशी के गौरव को देश और विदेश में संगीत प्रेमियों के लिए एक सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। जिस पर काशी नगरी को विशेष गर्व है।